

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा  
ग्यारहवीं योजना के अंतर्गत प्रस्तुत  
लघुशोध प्रकल्प

“सन् 1960 के बाद के उपन्यासों  
में अभिव्यक्त आदिवासी विमर्श”

-प्रस्तुतकर्त्री-

डॉ. स्वाती रमेश नारखेडे

सहायक प्राध्यापिका, हिंदी विभाग

भुसावल कला, विज्ञान एवं पु. ओं. नाहाटा

वाणिज्य महाविद्यालय, भुसावल,

जि. जलगाँव ( महाराष्ट्र)

अगस्त - 2014

सन् 1960 के बाद के उपन्यासों में अभिव्यक्त आदिवासी विमर्श

## लघुशोध प्रकल्प

### अनुक्रम

विवरण	पृ. संख्या
• प्राक्कथन	1 . 3
• प्रथम अध्याय : आदिवासी उपन्यासों की अवधारण एवं स्वरूप	4 . 20
• द्वितीय अध्याय : आदिवासी केन्द्रित हिंदी उपन्यासों का परिचयात्मक अध्ययन	21 . 47
• तृतीय अध्याय : आदिवासी केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में आर्थिक विमर्श	48 . 64
• चतुर्थ अध्याय : आदिवासी केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में सामाजिक विमर्श	65 . 105
• पंचम अध्याय : आदिवासी केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में धार्मिक विमर्श	106 . 118
• शष्ठ अध्याय : आदिवासी केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में सांस्कृतिक विमर्श	119 . 125
• सप्तम अध्याय : उपसंहार	126 . 132
• परिशिष्ट : संदर्भ ग्रंथ	1133 . 142

प्राक्कथन

## प्राक्कथन

प्रस्तुत लघुशोध प्रबंध में आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों का अध्ययन किया गया है। आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों के दो आयाम हैं—1. आदिवासियों द्वारा लिखे गये उपन्यास 2. गैर आदिवासियों द्वारा लिखे गये उपन्यास। इस प्रबंध में गैर आदिवासियों द्वारा लिखे गये आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों का ही अध्ययन किया गया है। इसी प्रकार सन् 1990 से अद्यतन लिखे गये आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों को दृष्टिकेन्द्र में रखा गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत लघुशोध प्रबंध को छह अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय में 'आदिवासी विमर्श की अवधारणा एवं स्वरूप' को विवेचित किया गया है, जिसके अंतर्गत आदिवासी की परिभाषा, आदिवासी शब्द की उत्पत्ति, आदिवासियों की विशेषता के साथ हिंदी साहित्य में लिखे गये आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों की अत्यंत संक्षेप में परंपरा को समझाते हुए उपन्यासों का परिचय प्रस्तुत है।

द्वितीय अध्याय में विवेच्य 'आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों का परिचयात्मक विवेचन' प्रस्तुत करते हुए उनकी विशेषताओं को रेखांकित किया गया है। लघुशोध प्रबंध में व्यक्त आदिवासियों के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयामों के अध्ययन के पूर्व विवेच्य उपन्यासों का अध्ययन समीचीन है।

तृतीय अध्याय में 'आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में आर्थिक आयाम' का निरूपण किया गया है। इसमें आदिवासियों की आर्थिक समस्याओं का निरूपण करते हुए उनके आर्थिक शोषण के कारणों की भी मीमांसा की गई है।

चतुर्थ अध्याय में 'आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में आदिवासियों के सामाजिक जीवन' का गहन एवं विस्तृत अध्ययन किया गया है। इसमें तीन भागों में अध्ययन किया है, जिसमें परिवार, समाज और नारी है। इस अध्याय में यह प्रयास किया गया है कि आदिवासी समाज के जीवन, उनकी जिजीविषा, उनका पारिवारिक जीवन, उनकी सामाजिक स्थिति और आदिवासी स्त्रियों की स्थिति का सोदाहरण विवेचन है।

पंचम अध्याय में 'आदिवासी समाज में व्याप्त धार्मिक मान्यताओं' के अंतर्गत इनके देवी-देवताओं की ओर संकेत किया गया है। प्रायः आदिवासी समाज के अपने-अपने स्थानीय देवी देवता होते हैं। इसके अतिरिक्त इनके पर्व, त्यौहार होते हैं। जिसमें ये सामुहिक भोजन के साथ सामुहिक, धार्मिक विधि-विधान करते हैं। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बलि दी जाती है। पूजा विधान ओझा करता है, जिसे शराब और धन की भेंट देनी पड़ती है, जिसका निरूपण इस अध्याय में किया गया है।

षष्ठ अध्याय में 'आदिवासी समाज के सांस्कृतिक आयामों' को दृष्टिपथ में रखा गया है। आदिवासी लोकगीत, लोकनृत्य, लोकवाद्य विशिष्ट होते हैं। विभिन्न सांस्कृतिक आयोजनों के माध्यम से इनकी संस्कृति व्यक्त होती है, जिसका सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

अंत में निष्कर्ष रूप में 'उपसंहार' प्रस्तुत किया गया है जिसमें सभी अध्यायों को दृष्टिकेन्द्र में रखकर समग्र निष्कर्ष की प्रस्तुति हुई है।

मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत लघुशोध प्रबंध 'हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श को समझने में समीचीन सिद्ध होगा।

प्रस्तुत लघुशोध प्रबंध के लिए मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे आर्थिक अनुदान प्रदान किया। इसी प्रकार उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ। ताप्ती एज्युकेशन सोसायटी भुसावल के अध्यक्ष श्री. मोहनभाऊ फालक तथा समस्त संचालक मंडल के सदस्य, प्राचार्य डॉ. मीनाक्षी वायकोळे इन्होंने सतत मुझे प्रोत्साहित किया है। उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय जलगाँव के हिंदी अध्ययन मंडल के पूर्व अध्यक्ष डॉ. मनोहर सराफ एवं डॉ. मधुकर खराटे पूर्व अधिष्ठाता कला एवं ललितकला संकाय उमवि, जलगाँव के प्रति ऋण निर्देश करती हूँ। जिन्होंने सदैव शैक्षणिक कार्य हेतु मार्गदर्शन किया है ऐसे मेरे विभाग की विभागाध्यक्षा डॉ. रेखा गाजरे एवं मेरे पति श्री. रमेश जी नारखेडे का सहयोग निरंतर रहा है।

प्रस्तुत लघुशोध प्रबंध हेतु उपजीव्य ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं की उपलब्धि के लिए मैं भुसावल कला, विज्ञान एवं पु. ओं. नाहाटा वाणिज्य महाविद्यालय, भुसावल के ग्रंथपाल डॉ. दिलीप देशमुख तथा जयकर ग्रंथालय पुणे, मुलजी जेठा महाविद्यालय, जलगाँव आदि ग्रंथालयों के कर्मचारियों के प्रति ऋणनिर्देश करना अपना कर्तव्य समझती हूँ।

**प्रा. डॉ. स्वाती रमेश नारखेडे**

भुसावल कला, विज्ञान एवं पु. ओं. नाहाटा  
वाणिज्य महाविद्यालय, भुसावल.

## प्रथम अध्याय

'आदिवासी उपन्यासों की अवधारणा एवं स्वरूप'

## प्रथम अध्याय

### “आदिवासी विमर्श की अवधारणा एवं स्वरूप”

भारत एक विशाल राष्ट्र है। जहाँ अनेक समुदाय निवास करते हैं। भारत की सामाजिक संस्कृति में आदिवासी समाज का अपना अस्तित्व है। सामान्यतः आदिवासी शब्द से तात्पर्य है—‘यहाँ के मूल निवासी’। आदिवासी का शाब्दिक अर्थ है आदिम युग में रहनेवाली जातियाँ। मूलतः ये वे जातियाँ हैं जो 5000 वर्ष पुरानी तथा आदि सभ्यता को संभाले हुए हैं। कभी आदिवासियों की स्वतंत्र सत्ता थी। उनका जल, जंगल और जमीन के संसाधनों पर अधिकार था। परंतु जैसे-जैसे साम्राज्यवादी शक्तियाँ पनपती गईं वैसे-वैसे उनके संसाधनों पर आक्रमण होने लगा। उनका शोषण होने लगा। इसलिए आज आदिवासी विमर्श अस्तित्व का विमर्श है।

किसी एक विशिष्ट भूप्रदेश में निवास करनेवाले, समान बोली का प्रयोग करनेवाले निरक्षर समूह को आदिवासी कहा जाता है। आदिवासियों को जनजाति, वनवासी, गिरिजन आदि नामों से अभिहित किया जाता है। भारतीय संविधान में इन्हें अनुसूचित जनजाति माना है। इस आदिवासियों के संदर्भ में लिखे गए साहित्य के संबंध में डॉ. विनायक तुकाराम का अभिमत है कि—‘आदिवासी साहित्य वन संस्कृति से संबंधित साहित्य है। आदिवासी साहित्य उन वन जंगलों में रहनेवाले वंचितों का साहित्य है जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर ही नहीं दिया गया। यह ऐसे दुर्लक्षितों का साहित्य है जिनके आक्रोश पर मुख्य धारा की समाज व्यवस्था ने कभी ध्यान ही नहीं दिया। यह गिरी कंदराओं में रहनेवाले आदिवासियों का साहित्य है। सदियों से जारी क्रूर और कठोर न्यायव्यवस्था ने जिनकी सैकड़ों पीढ़ियों को आजीवन वनवास दिया। उस आदिम समूह की मुक्ति का साहित्य है।’

आदिवासी विमर्श के संबंध में विचार करने पर यह तथ्य सामने आता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों बाद भी इस देश की लगभग 8 से 10 प्रतिशत जनता अपने मूलभूत अधिकारों को जानती नहीं है। शोषण और अभाव को सहजता से स्वीकार करती है और दूसरी और लोकतंत्र की डुगडुगी पीटनेवाले किसी नौटंकी पार्टी के मसखरे-से लगते हैं। आदिवासियों



की त्रासद स्थितियों को लक्ष्य कर विभिन्न विधाओं में साहित्य सृजित हुआ है। महादेव ने आदिवासियों की यथार्थ स्थिति को इन काव्य पंक्तियों में उभारा है—

“और गलती से तुम अगर हो पैदा

जंगल में

तो तुम कहलाओगे

आदिवासी—वनवासी—गिरिजन

वगैरह—वगैरह

आदमी तो कम से कम

कहलाओगे नहीं ही।”<sup>1</sup>

आदिवासियों का जीवन प्रकृति पर आश्रित है। वे रोटी की खोज में वन—वन भटकते रहते हैं। सामान्यतः शिकार पर अपनी भूख मिटाना उनकी प्रवृत्ति है। वास्तव में आदिवासियों का जीवन पशुगत होता है। वह अभाव में जन्म लेता है, अभाव में जीवन व्यतीत करता है और अभाव में ही मृत्यु को प्राप्त होता है। शोषण उनके जीवन का अंग है और इस शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए वह संघटित नहीं हो पा रहा है। डॉ. विनायक तुकाराम के शब्दों में—“प्रत्येक सदी में छला, सताया गया, नंगा किया गया और एक सोची—समझी साजिश के तह वन—जंगलों में लोगों द्वारा भगाया गया एक असंगठित मनुष्य अपनी स्वतंत्र परंपरा से सहस्र सालों से गाँव, देहातों से दूर घने जंगलों में रहनेवाला संगहीन मनुष्य।”<sup>2</sup>

आदिवासियों के जीवन की विशेषताओं को रमणिका गुप्ता ने ‘आदिवासी साहित्य यात्रा’ में अभिव्यक्त किया है। वे लिखती हैं कि—“सदियों पहले आर्यों से परास्त होकर ये लोग जंगलों में खदेड़ दिये गये थे। सामुहिक जिंदगी जीनेवाले प्रकृति प्रेमी, प्रकृति के सहयात्री और सहयोगी आदिवासी समूह संपत्ति की धारणा व लिंग विभेद के भेदों के बिल्कुल अनजान थे। वे

सदियों से जंगलों के फल, कंद—मूल खाकर नदियों के पेट में या जंगलों में झूम खेती करते हुए बड़े स्वाभिमान सहित अपनी भाषा, संस्कृति और जीवन शैली को जिंदा रखे हुए थे।”<sup>3</sup>

सम्प्रति, आदिवासियों को विकास के कारण अपनी जमीन से बेदखल किया जा रहा है। इस संदर्भ में मधु कांकरिया लिखती हैं कि—“आदिवासियों को जंगल, नदी और पहाड़ों से घिरे उनके प्राकृतिक और पारंपरिक परिवेश से बेदखल किया जा रहा है अभीतक वह अपने विश्वासों रीति, रिवाजों, लोक नृत्यों, लोक गीतों के साथ, कुओं, मवेशियों, नदियों, तालाबों और जड़ी बूटियों से संपन्न एक जनसमाज में रहता आया है इसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति रही है उसका अपना विकसित अर्थतंत्र था वह अपने पुश्तैनी, पारिवारिक, पारंपरिक और कृषि आधारित कुटीर धंधों से पारंगत था। बढईगिरी लोहागिरी, मधु पालन, दोना पत्तल, मधु उत्पादन, रस्सी चटाई बुनाई जैसे काम उसे विरासत में मिले थे पर आज खुले बाजार की अर्थव्यवस्था ने सदियों से चले आये उसके पुश्तैनी और पारंपरिक धंधों को चौपट कर डाला है।”<sup>4</sup>

यह आदिवासी समाज विकास के नाम पर कटा हुआ है, संदर्भहीन है। आज आदिवासी शब्द का प्रयोग होते ही सामान्यतः यह चित्र उपस्थित होता है कि आदिवासी वह व्यक्ति है जिसका जीवन हजारों सालों से छलनी के समान होता गया है जो आधुनिकता से दूर है। जो पर्वत घाटियों में जी रहा है। वह सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा करता है। यह एक परिस्थिति है कि भारत जैसे विकसनशील राष्ट्र में आदिवासी विकलांग स्थिति में जी रहा है। डॉ. मधुकर खराटे के शब्दों में—“देश की कुल जनसंख्या का लगभग पंद्रहवाँ भाग आदिवासी एवं जनजाति आजादी के साठ वर्ष बाद भी गुमनाम जी रहा है। कभी घुमंतू, कभी अपराधी तो कभी असभ्य बनकर। इन्हीं के नाम पर करोड़ों—अरबों रुपए आबंटित हुए हैं। लेकिन इनकी दशा में अभी भी गुणात्मक विकास दिखाई नहीं पड़ता।”<sup>5</sup> आदिवासियों का जीवन सीधा—सादा होता है। ये स्वभाव से सरलमना होते हैं। रमणिका गुप्ता ने इन आदिवासियों के जीवन को इन शब्दों में व्यक्त किया है—“आदिवासियों की गति में नृत्य है—वाणी में गीत। जब वह चलता है तो थिरकता है और बोलता है तो गीत के स्वर फूटते हैं। वह अकेला नहीं, समूह में रहता है, समूह में सोचता है, समूह में जीता है...दरअसल आदिवासी अपने श्रम के बलपर सदैव आत्मनिर्भर और

स्वावलम्बी रहा है। अपने समूह और समाज से जुड़कर, प्रकृति का साथी बनकर जीना उसकी शैली और स्वभाव रहा है।<sup>6</sup>

भारत में लगभग 18 से 10 प्रतिशत आदिवासी है। यद्यपि उन्हें संवैधानिक संरक्षण प्राप्त है। परंतु आर्थिक संरक्षण के अभाव में उन्हें दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष करना पड़ता है। यह दुःखद स्थिति है कि आजादी के सात दशक बाद भी आदिवासी आदिम अवस्था में जीने को विवश है। यह एक आशादायी स्थिति है कि समाज के बुद्धिवादी वर्ग का ध्यान आदिवासियों की ओर आकृष्ट हो रहा है। सम्प्रति, आदिवासियों के जीवन की साहित्य में अभिव्यक्ति हो रही है।

हिंदी का कथा-साहित्य गहन और व्यापक है। हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में उपन्यास लोकप्रिय विधा रही है। सम्प्रति, नारी विमर्श, दलित विमर्श और आदिवासी विमर्श को दृष्टिपथ में रखकर कथा-साहित्य विशेषकर उपन्यास का सृजन हो रहा है। आदिवासी विमर्श केंद्रित उपन्यासों की एक परंपरा रही है—“आदिवासियों के जटिल जीवन चित्र को अंकित करने के लिए लेखक कहीं मोटी रेखाएँ खींचता है, कहीं पतली, कहीं अवकाशों को भरने के लिए दो-चार बिंदु अपनी तूलिका से जड़ देता है। अनेक पर्वों, उत्सवों, परम्पराओं, विश्वासों, व्यथा के अवसरों, गीतों, संघर्षों, प्रकृति के रंगों, पुराने-नए जीवन-मूल्यों से लिपटा हुआ आदिवासियों का जीवन अभिव्यक्ति के एक नए माध्यम की अपेक्षा करता है।<sup>7</sup>

आदिवासियों की जीवन की विशेषताओं को इस रूप में अभिव्यक्त किया गया है—1. आदिवासी निरक्षर और अशिक्षित होते हैं। 2. आदिवासियों के सामाजिक संगठन, समूह, कबीले तथा परिवार आदि तक सीमित होते हैं। 3. आदिवासी आर्थिक दृष्टिकोण से अत्यंत त्रासदमय स्थिति में होते हैं। उनके यहाँ वन्य सामग्री उनकी पूँजी है। उसीको एकत्रित कर वे बेचते हैं। आधुनिक औद्योगिक क्रांति के कारण विकास होने के कारण जंगलों का दोहन किया जाने लगा। इसका परिणाम आदिवासियों को भुगतना पड़ा। आदिवासियों के सामाजिक संबंध अत्यंत सीमित होते हैं उनके सामाजिक संबंध अपने भौगोलिक क्षेत्र और कबिलाई समूह तक सीमित होते हैं। इस प्रकार आदिवासी एक सामाजिक समुदाय है जो विशिष्ट भाषा का प्रयोग करता है जिसकी

अपनी एक लोकसंस्कृति होती है। डॉ. उमेशचंद्र शुक्ल के शब्दों में—“प्रकृति और संकृति का पारस्परिक सन्तुलन, सामाजिक समानता, आर्थिक सहभागिता, सर्व सम्मतिमूलक जनतंत्र, धार्मिक सहिष्णुता, सामुहिक कलात्मक अभिरुचि, अभिव्यक्ति आदिवासी समुदाय की विशेषताएँ हैं। हवा की तरह ही जल, जंगल और जीना इनकी दृष्टि में व्यक्तिगत सम्पत्ति न होकर सामुदायिक संसाधन है।”<sup>8</sup>

आदिवासी विमर्श को दृष्टि में रखकर सर्वप्रथम उपन्यास जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का सन् 1899 में प्रकाशित ‘बसंत मालती’ माना जाता है। इस उपन्यास में मुंगेर जिले के मलयपुर क्षेत्र के आदिवासी मल्लाहों के जीवन का वर्णन किया गया है। ब्रजनंदन सहाय ने सन् 1904 में विंध्याचल के आदिवासियों के जीवन को दृष्टि में रखकर ‘अरण्यबाला’ का प्रणयन किया। इसी वर्ष मन्नन द्विवेदी ने आदिवासी केंद्रित ‘रामलाल’ नामक उपन्यास लिखा। रामचीज सिंह ने 1909 में संथाल परगना के आदिवासियों के जीवन को लेकर ‘वन विहंगिनी’ नामक उपन्यास लिखा। स्वातंत्रोत्तर युग में आदिवासियों के जीवन को आधार बनाकर देवेन्द्र सत्यार्थी ने ‘रथ के पहिये’ की रचना की। इस उपन्यास में आनंद नामक पात्र अपने मित्रों के साथ आदिवासी अंचल में पहुँचता है। आदिवासियों के सहज—स्वाभाविक, निश्चल जीवन से वह प्रभावित होता है। परंतु उसे आदिवासी समाज में व्याप्त अशिक्षा, अंधविश्वास, औरतों का शोषण देखकर दुख पहुँचता है। अतः वह आदिवासियों के कल्याण के लिए ‘कला भारती’ नामक आश्रम की स्थापना करता है। योगेंद्रनाथ सिन्हा ने सन 1956 में बिहार के ‘हो’ नामक आदिवासी समाज पर ‘वनलक्ष्मी’ नामक उपन्यास लिखा। इस उपन्यास की बुदनी ‘हो’ समाज की हैं जो ईसाई धर्म के जेफरन से प्रेम करती हैं। अतः उसके माता—पिता और बुदनी को आदिवासी समाज से निष्कासित कर दिया जाता है। इस उपन्यास में आदिवासियों की धर्मांतरण समस्या को उठाया गया है।

सन् 1957 में डॉ. रांगेय राघव ने ‘कब तक पुकारें’ नामक महाकाव्यात्मक उपन्यास लिखा। इसमें राजस्थान के उत्तर प्रदेश की सीमापार के ब्रज क्षेत्र के करनट आदिवासियों के जीवन का विस्तार से चित्रण हुआ है। उपन्यास की कथावस्तु चार पीढ़ियों तक व्याप्त है। इसमें आदिवासियों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों का यथार्थ चित्रण हुआ है। इसके पश्चात् सन् 1960 में शानी का ‘सॉप और सीढ़ी’ उपन्यास प्रकाशित हुआ। जिसमें बस्तर जिले के

आदिवासियों के जीवन को प्रस्तुत किया गया है। मध्य प्रदेश में भील नामक आदिवासी बड़ी संख्या में निवास करते हैं जो मालवा और निमाड़ के क्षेत्र में हो रहे निर्माण कार्य पर मजदूरी करते हैं। इन्हीं भील आदिवासियों को मुख्य विषय बनाकर श्याम परमार ने सन् 1963 में 'मोरझाल' उपन्यास लिखा। इन्हीं भील जाति के आदिवासियों पर सतीश दुबे ने 'कुराटी' नामक उपन्यास लिखा। यह उपन्यास आदिवासियों के जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज हैं क्योंकि लेखक एक शासकीय अधिकारी के रूप में कार्यरत रहे हैं। अतः उन्होंने आदिवासियों की समस्याओं को निकट से देखा है। इसलिए यह उपन्यास आदिवासियों के जीवन का यथार्थ दस्तावेज है।

मध्यप्रदेश का बस्तर क्षेत्र आदिवासी बहुल है। बस्तर क्षेत्र के आदिवासियों को दृष्टि में रखकर राजेंद्र यादव ने 1969 में 'जंगल के फूल' उपन्यास का सृजन किया। इस उपन्यास में सामाजिकता के अंतर्गत विवाह के पूर्व लड़के-लड़की का घोटुल में रहने की प्रथा का चित्रण हुआ है। इसी के साथ भोले-भाले आदिवासियों की संस्कृति का भी निरूपण हुआ है।

उत्तरशती में आदिवासी उपन्यासों का लेखन गतिमान हुआ। मणि मधुकर ने राजस्थान के गाड़िया लुहार आदिवासी समाज को दृष्टिकेंद्र में रखकर 'पिंजरे में पन्ना' उपन्यास लिखा। इसी उपन्यास में गाड़िया लुहार, ख्याल की नायिका पन्ना और नंदेरम्या की लोककला के माध्यम से तीन कथाएँ निरूपित की गई हैं। इस समाज में आदिवासी समाज की यायावरी प्रवृत्ति का चित्रण हुआ है। राकेश वत्स ने 1982 में दमकड़ी के आदिवासी समाज पर 'जंगल के आसपास' उपन्यास लिखा। जिसमें यह आदिवासी समाज पूँजीपतियों के द्वारा किस प्रकार शोषित होता रहा इसका विस्तार से चित्रण है। अल्मोड़ा क्षेत्र की घाटियों में महर ठाकुर नामक आदिवासी समाज रहता है जो आधुनिक सभ्यता से पूर्णरूप से कटा हुआ है।

शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष' सन् 1986 में लिखा गया जो नट आदिवासियों पर केन्द्रित उपन्यास है। कथा की पृष्ठभूमि चंदोसी तहसिल का खेतीपुर गाँव है। इस उपन्यास के संदर्भ में डॉ. रामविनोद सिंह लिखते हैं कि—“नटों की जिंदगी के अंतर्विरोध, उसकी सांस्कृतिक चेतना में आते हुए बदलाव, रीति-रिवाज, लोकगीत, लोकविश्वास, आर्थिक विषमता और अभाव के कारण टूटती नैतिकता, सामाजिक जीवन के साथ निजी जीवन की झॉकियाँ और समाज से नटों के

संबंध, उनके जुझारु और विलासी स्वभावों का बड़ा ही सूक्ष्म विप्लेशण है।<sup>9</sup> उपन्यास में भूमिहीन आदिवासियों के सरकार द्वारा 40 एकड़ भूमि प्रदान की जाती है। परंतु गॉव का जमींदार, घूरेफेकन तिवारी उसे निगलने के लिए अनेक प्रकार से प्रयत्न करता है। इस प्रकार यह आदिवासियों की जीवन की कथा से जुड़ जाता है। उपन्यास में अनेकानेक पात्र हैं। इसमें सावित्री के चरित्र को रेखांकित किया गया है। वही उपन्यास की केन्द्र है। उपन्यास के केन्द्रिय उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए नवम् दशक के आंचलिक उपन्यासों में डॉ. पांडुरंग पाटील ने लिखा है—“लोकजीवन और लोकसंस्कृति की दृष्टि से शैलूष का स्थान महत्वपूर्ण है। इसमें कबिलाई जीवन के विविध आयामों का अंकन हुआ है। संयुक्त परिवार, पारिवारिक संबंधों में स्थित स्नेह, कलह, विवाह विषयक मान्यताएँ, नारी समाज, यायावार जीवन के परिणाम स्वरूप उत्पन्न मानसिकता, नटों के परस्पर संघर्ष, अज्ञान, स्वाभिमान, व्यसनाधीनता, अंधविश्वास, अशिक्षा, यौन संबंधी मान्यताएँ, रस्म रिवाज, जाति पंचायत, स्वच्छंद जीवन आदि विविध संदर्भ इसमें मिलते हैं।”<sup>10</sup>

कृष्णा अग्निहोत्री ने सन 1988 में ‘निलोफर’ नामक उपन्यास लिखा। इस उपन्यास के महत्व को रेखांकित करते हुए प्रकाशकीय वक्तव्य में यह टिप्पणी लिखी हुई है कि—“कई आदिवासी क्षेत्रों की पृष्ठभूमि पर निलोफर ने जन्म लिया। लेकिन आदिम पाशविकता ने उसे डंसा और वह मानवता की तलाश में व्याकुल मानव के कुचक्रों का शिकार होती रही....लेकिन अनुभव ही तो गहरी चेतनता पैदा करते हैं।”<sup>11</sup> हिंदी की सुप्रसिद्ध कथा लेखिका का आदिवासी जीवन पर आधारित यह उपन्यास है।

झारखंड जिले के पलामू जिले के जंगल में बसे ओराव आदिवासियों के जीवन को लेकर मनमोहन पाठक ने सन 1991 में ‘गगन घटा घहरानी’ उपन्यास लिखा। जिसमें सामंतवादी व्यवस्था में शोषित हो रहे आदिवासियों की व्यथा—कथा है।

आदिवासी जीवन को सशक्त रूप में उभारने का श्रेय वीरेंद्र जैन को है। उन्होंने ‘धार’ 1990 में बिहार की संथाल परगना में कोयलों के खदानों में काम करने वाले आदिवासियों के त्रासद जीवन को चित्रित किया है। संथाल आदिवासी नायिका मैना के माध्यम से पूँजीपतियों,

ठेकेदारों, कोयला माफियों एवं पुलिस के द्वारा आदिवासियों पर किए जा रहे शोषण का यथार्थांकन इस उपन्यास की विशेषता है। बुंदेलखंड के क्षेत्र के आदिवासियों की व्यथा को व्यक्त करने के लिए 'पार' नामक उपन्यास लिखा। यह उपन्यास आदिवासी जीवन का यथार्थ दस्तावेज कहा जा सकता है। संजीव का उपन्यास 'पाँव तले की दूब' 1995 के केन्द्र में झारखंड के आदिवासी हैं जो औद्योगिकीकरण के अंतर्गत विस्थापित होने के लिए विवश है। इस उपन्यास में आदिवासियों की दरिद्रता वर्णित हैं। कुपोषण के शिकार ये आदिवासी अत्यंत दयनीय हैं। उपन्यासकार ने आदिवासियों के जीवन संकट को व्यक्त करते हुए लिखा है कि—“पर अन्याय देखो, आदिवासियों को जिनकी जमीन पर ये कारखाने लग रहे हैं, उन्हें टोटली डिप्राइव किया जा रहा है। इस संपत्ति में उनकी भागीदारी खत्म की जा रही है, उन्हें जमीन से भी बेदखल किया जा रहा है, मुआवजा भी अफसरों के पेट में।”<sup>12</sup>

अरण्यमुखी संस्कृति में जी रहे आदिवासियों की दो कमजोरियाँ हैं। एक तो अरण्यमुखी संस्कृति उन्हें सभ्यता के विकास से जुड़ने नहीं देती और दूसरे उत्सवधर्मिता उन्हें गुमराह बनाये रहती है। इसी कमजोरी का लाभ महाजन, ठेकेदार, शासक उठाते हैं। उपन्यास में आदिवासियों की परेशानी यह है कि ताकत और शक्तियाँ इनका शोषण करती रहती हैं। विकास के नाम पर इनको प्राप्त अनुदान को हड़पने के प्रयास में रहती है। समग्रतः उपन्यास आदिवासी जीवन का जीवंत इतिहास है।

श्रीप्रकाश मिश्र ने उत्तर पूर्व में स्थित आदिवासी लुशेइयों को दृष्टिकेंद्र में रखकर 1997 में 'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास की रचना की। इस उपन्यास में आदिवासियों का जमींदारों द्वारा शोषण वर्णित है। इन आदिवासियों को नक्सलवादी करार देकर पुलिसों द्वारा अत्याचार किये जाते हैं। भगवानदास मोरवाल ने सन 1999 में 'काला पहाड़' उपन्यास का सृजन किया। उपन्यास उत्तर प्रदेश की सीमा पर स्थित 'मेव' नामक आदिवासी के जीवन को उभारता है। यह आदिवासी हिंदुओं के साथ मिल-जुलकर रहते थे। परंतु कुछ स्वार्थी लोग साम्प्रदायिक वैमनस्य फैलाते हैं। यही उसकी करुण कहानी है।

सहरिया आदिवासियों को दृष्टि में रखकर पुन्नी सिंह ने सन् 1999 में 'सहराना' नामक उपन्यास लिखा। इसमें सहरी आदिवासियों के उत्पीड़न की व्यथा-कथा है। इस उपन्यास के संदर्भ में कहा जा सकता है कि आदिवासियों का जीवन जमीन, जल, जंगल से जुड़ा हुआ है। इस समाज की स्त्रियाओं को अनेक समस्याओं से गुजरना पड़ता है इसका वर्णन प्रस्तुत उपन्यास की विशेषता है।

भारत नेपाल की सीमा पर स्थित चंपारण जिले के 'थारु' आदिवासी पर संजीव ने 'जंगल जहाँ शुरु होता है' उपन्यास की रचना की। यह क्षेत्र मिनी चंबल के नाम से प्रसिद्ध है। इसी परंपरा में कबूतरा आदिवासी पर मैत्रेयी पुष्पा का सन् 2000 में 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास प्रकाशित हुआ। यह महाकाव्यात्मक उपन्यास 18 अध्यायों में निमग्न है। इसमें बुंदेलखंड की कबूतरा नामक आदिवासी के जीवन का विस्तृत एवं गहन चित्रण हुआ है उपन्यास की नायिका कदमबाई है। जिसके जीवन चरित्र को केंद्र में रखकर उपन्यास सृजित हुआ है। तेजन्दर के 'काला पादरी' उपन्यास में उरॉव आदिवासी की प्रमुख समस्या भूख को चित्रित किया है। भूख से बेहाल होकर वे धर्म परिवर्तन को तैयार हो जाते हैं क्योंकि भूख से मरने से अच्छा है इसाई धर्म अपना लेना। जब अकाल पड़ता है तो उन लोगों को चर्च की ओर से भोजन मिलता है।

राकेश कुमार सिंह का 'पठार पर कोहरा' सन् 2003 में प्रकाशित हुआ। जो झारखंड के आदिवासियों पर लिखा हुआ सशक्त उपन्यास है। प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा गया है कि—'झारखंड के वर्तमान जनजाति जीवन पर लिखा गया यह सशक्त उपन्यास है 'पठार पर कोहरा'। इस उपन्यास में इन क्षेत्रों में शोषण, उत्पीड़न और अत्याचार के नए दृश्य को उभारा गया है। आदिवासियों की व्यथा यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् झारखंड के वनांचल में एक शोषक वर्ग का उदय हुआ जो साहू बाबू, बंदूक की संस्कृति से प्रभावित था। जिसने आदिवासियों का शोषण किया।

श्रवणकुमार गोस्वामी का आदिवासी केन्द्रित उपन्यास 'हस्तक्षेप' सन् 2003 में प्रकाशित हुआ। इसमें सतपुड़ा, बुंदेलखंड, बघेलखंड और महादेव की पहाड़ियों में स्थित आदिवासियों के जीवन का सर्वांगीण चित्रण किया गया है। यद्यपि इन आदिवासियों के विकास के लिए शासन



की और से विविध आयोग स्थापित हुए परंतु विकास के नाम पर लूट मची रही और यह शोषण शासन के द्वारा ही हुआ। परंतु आदिवासियों के नेता कहे जानेवाले तथाकथित बदमाशों के द्वारा भी हुआ। सदानंद प्रसाद गुप्त लिखते हैं कि—“इस उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद्य है आदिवासी कही जानेवाली जाति के विकास के नाम पर किये जाने वाले व्यापार का एक्सपोजर। विश्वविद्यालय के प्रोफेसर चौधरी आदिवासी संस्कृति के प्रसार के नाम पर विदेश यात्रा करते हैं और अर्थ और यश का उपार्जन करते हैं।”<sup>13</sup> प्रस्तुत उपन्यास का कथानक दो स्तरों पर चलता है। एक स्तर पर है महुआ चक्रवर्ती जो रंगपुर विश्वविद्यालय में हिंदी की प्राध्यापिका और आदिवासी छात्रावास की अधीक्षक है और दूसरे स्तर पर कर्मा भगत हैं जो आदिवासियों के लिए पूज्य हैं।

इसी क्रम में लेखिका शरद सिंह ने आदिवासी बेड़िया समाज को दृष्टिकेन्द्र में रखकर ‘पिछले पन्ने की औरतें’ उपन्यास लिखा। इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमें बेड़िया समाज की औरतों को केन्द्र में रखकर उनके विवश जीवन को उकेरा गया है। यह आदिवासी स्त्री प्रगति की मुख्य धारा से वंचित है और पुरुषप्रधान समाज में उसका देहिक मानसिक और आर्थिक शोषण होता है। प्रस्तुत उपन्यास तीन भागों में लिखा गया है— भाग एक को ‘अतीत की सुनहरी काली छाया’ भाग दो को ‘आहत होने की अर्थ की तलाश’ और भाग तीन को ‘राई के नीचे बनी औरतें’ शीर्षक दिया गया है। शीर्षक की सार्थकता को सिद्ध करते हुए स्वयं लेखिका ने लिखा है कि—“एक स्त्री रखैल का जीवन पिछले पन्ने पर दर्ज उस औरत के समान होता है जो पुरुष के जीवन की डायरी में लिखी रहती है, किंतु उसका अस्तित्व उस खुले हुए पन्ने के पीछे दबा रहता है जिसका नाम है पत्नी। किसी पुरुष की पत्नी उसके जीवन के सामने रखा, खुला हुआ पन्ना है तो उसके रखैल उसके ठीक पृष्ठ-भाग का पन्ना है।”<sup>14</sup> प्रस्तुत उपन्यास में रिपोर्ताज शैली का प्रयोग किया गया है।

भगवानदास मोरवाल का 2008 में ‘रेत’ नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। वंजारा जनजाति के कंजर समाज पर यह उपन्यास केन्द्रित है। कंजर अर्थात् काननचर, जंगल में घूमनेवाला आदिवासी समूह अर्थात् घुमंतू। कथा का केन्द्र गाजूकी गाँव है। कथा इस गाँव में स्थित कमलासदन के आसपास घूमती है। रेत से तात्पर्य है कि जिसकी अपनी कोई पकड़ न

हो। उपन्यास की नायिका रुक्मिणी को रेत माना गया है। उपन्यास नारी प्रधान है जिसमें वेश्या व्यवसाय करनेवाली आदिवासी स्त्रियों का चित्रण है। जिन्हें खिलावड़ी कहा जाता है। रेत केवल वेश्या जीवन की त्रासदी नहीं है इसमें रुक्मिणी और सावित्री के माध्यम से नारी संघर्ष को उजागर किया गया है। वास्तव में रेत एक प्रतीकात्मक उपन्यास है। प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा गया है कि—“गाजूकी और इसमें स्थित कमला सदन के बहाने दुर्दम्य समाज की कहानी है। जिसमें एक तरफ कमला बुआ, सुशिला, माया, रुक्मिणी, वंदना, पूनम है तो दूसरी तरफ संतो और अनिता भाभी।”<sup>15</sup> कथा में नारी जीवन के दो आयाम हैं। वे नारियाँ हैं जो घर की चार दीवारी में रहती हैं और घर की देखभाल करती हैं। जिन्हें ‘भाभी’ कहा जाता है। तो दूसरी और देह बेचनेवाली ‘खिलावड़ी’ स्त्रियाँ हैं। आदिवासी नारी विमर्श का यह एक सशक्त उपन्यास है।

पंजाबी कथाकार कुलदीपसिंह सूरि ने महाराष्ट्र के जंगलों में बसे आदिवासियों के जीवन पर आधारित ‘जंगल की संतान’ लिखा जो 2009 में प्रकाशित हुआ। वनों को अपना घर और सबकुछ माननेवाले ये आदिवासी वृक्ष के कटने पर अत्यंत व्यथित होते हैं क्योंकि वृक्ष ही उनका जीवन हैं।

श्रीमती अजित गुप्ता के ‘अरण्य में सूरज’ उपन्यास में मेव प्रदेश में स्थित भील समाज का चित्रण है। जिसका प्रकाशन 2009 में हुआ। यह समाज अपनी रुढ़ियों, प्रथाओं, किवदंतियों, अंधविश्वासों से घिरा होने के कारण विकास की ओर अग्रसर नहीं हो पाया है। इसलिए इनका जीवन आर्थिक अभावों के लिए संघर्ष करते हुए व्यतीत होता है। लेखक ने उपन्यास में आदिवासियों की स्थिति, उनका समय और संघर्ष चित्रित किया है। इस समाज में बालमजदूरी, बालविवाह की प्रथा हैं समुदाय में जाति पंचायत का वर्चस्व है। यद्यपि भील अत्यंत परिश्रमी होते हैं। परंतु व्यवस्थागत विसंगतियों और विडंबना के कारण अभिशप्त जीवन जी रहे हैं। उपन्यासकार ने उपन्यास में आदिवासियों की मानसिकता, उनका अरण्य के प्रति मोह, जंगल संस्कृति और आदिवासियों के विस्थापन के मार्ग को विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से वर्णित किया है।

रणेन्द्र द्वारा लिखित 'ग्लोबल गाँव के देवता' सन् 2009 आदिवासी केन्द्रित अत्यंत चर्चित उपन्यास है। अब तक उसके तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इसमें आदिवासी समुदाय के जीवन को केन्द्र में रखा गया है। उपन्यासकार ने आदिवासी समाज के माध्यम से असुर आदिवासियों की त्रासदमय जीवनी अभिव्यक्त की है। ग्लोबल विदेश के इस युग में राजनेता, व्यापारी, तथाकथित ओझा, विभिन्न कंपनियों आदिवासियों को ठगने और उनका शोषण करने की व्यवस्थित योजना बनाकर उनका शोषण करती है। उपन्यास में इस आदिवासी समाज में व्याप्त रीति-रिवाजों, प्रथाओं, उनकी मानसिकता को उजागर किया है। इस समाज में आज जिस जीवन पद्धति की चर्चा हो रही है 'लिव इन टुगेदर' का उल्लेख किया गया है। उपन्यासकार की यह मान्यता है कि जब तक आदिवासी अन्याय का विरोध नहीं करेंगे तब तक उनका शोषण जारी रहेगा। उपन्यास के संदर्भ में अल्पना सिंह का अभिमत है कि—“ग्लोबल गाँव के देवता’ उपन्यास में भूमंडलीकरण के दौर में आदिवासियों की तबाही, बरबादी, लूट, बेदखली आदि का चित्रण हुआ है।”<sup>16</sup>

समग्रतः यही सिद्ध होता है कि 'ग्लोबल गाँव के देवता' में देवराज इन्द्र से लेकर ग्लोबल गाँव के देवता, नेता, व्यापारियों और बाबाओं द्वारा आदिवासियों के शोषण की कथा व्यक्त हुई है।

### **निष्कर्ष :-**

आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में आदिवासियों की नियति और त्रासदी अभिव्यक्त हुई है। जंगल में रहनेवाले वे आदिवासी साहुकारों, ठेकेदारों, जमीदारों, शासकीय अधिकारियों तथा पुलिस के द्वारा शोषित होते रहे हैं। विशेष रूप से नारी शोषण इनकी विवशता है। आधुनिक युग में होनेवाले औद्योगिक विकास और विभिन्न परियोजना के कारण इन आदिवासियों को विस्थापन की त्रासदी सहनी पड़ रही है। सामान्यतः उपन्यासों में आदिवासियों की आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक स्थितियों को त्रासदमय माना गया है। विभिन्न उपन्यासकारों ने आदिवासियों के जीवन का गहन अध्ययन करते हुए आदिवासियों के दर्द की गाथा उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत की है।

—संदर्भ ग्रंथ—

- 1) आदिवासी स्वर और नई शताब्दी—सं. रमणिका गुप्ता, पृ. 49
- 2) हाशिये की बेचारगी— सं. महेश शंकर चौधरी, पृ. 250
- 3) आदिवासी विमर्श: स्वस्थ जनतांत्रिक मूल्यों की तलाश—  
डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, डॉ. रावेन्द्र कुमार साहू पृ. 5
- 4) आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य — सं. डॉ. उषा कीर्ति राणावत,  
डॉ.सतीश पाण्डेय, डॉ. शीतला प्रसाद दुबे, पृ. 17
- 5) अनभै— सं. रतनकुमार पाण्डेय, पृ. 199
- 6) आदिवासी स्वर और नई शताब्दी— सं. रमणिका गुप्ता, पृ. 8
- 7) आदिवासी केन्द्रित हिन्दी उपन्यास— प्रो. के. बी.कलासवा, पृ. 64
- 8) आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य — सं. डॉ. उषा कीर्ति राणावत,  
डॉ.सतीश पाण्डेय, डॉ. शीतला प्रसाद दुबे, पृ. 296
- 9) नवें दशक के हिन्दी उपन्यास— रामविनोद सिंह— पृ. 105
- 10) नवें दशक के आंचलिक उपन्यास— डॉ. पांडुरंग पाटील, पृ. 145
- 11) निलोफर — प्रकाशकीय वक्तव्य
- 12) संजीव: जनधर्मी कथाशिल्पी—डॉ. गिरीश काशिद, डॉ. जयश्री शिंदे, पृ. 138
- 13) समीक्षा—जुलाई—सितंबर, 2004 पृ. 29

14) पिछले पन्ने की औरतें— शरद सिंह, पृ. 146

15) रेत— प्रकाशकीय वक्तव्य

16) वर्तमान समय में आदिवासी समाज— सं. डॉ. गीता वर्मा,

डॉ. रवि कुमार गोंड पृ. 156

## द्वितीय अध्याय

'आदिवासी केन्द्रित हिंदी उपन्यासों का  
परिचयात्मक अध्ययन'

## द्वितीय अध्याय

### आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों का परिचयात्मक अध्ययन

इसके पूर्व अध्याय में आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों के उद्भव और विकास को संक्षेप में किया गया है। इस अध्याय में लघुशोध प्रबंध के अंतर्गत समाविष्ट आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों का गहनता एवं विस्तार से परिचय दिया जा रहा है। जिसके परिप्रेक्ष्य में आदिवासियों के जीवन के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आयामों का अध्ययन और विश्लेषण किया गया है।

#### गगन घटा घहरानी – मनमोहन पाठक (1991)

मनमोहन पाठक ने सन् 1991 में 'गगन घटा घहरानी' उपन्यास लिखा जिसमें पलामू रोहताश के सीमा पर रहनेवाले उरॉव आदिवासियों के जीवन का निरूपण किया गया है। यह उरॉव आदिवासी लघूंगा, खजुरी, सोनाउ गाँवों में रहते हैं। वैसे इनका जीवन शांत है। परंतु रायसाहब जगधारी राय और उनके चीत्ते का डर और आतंक इन पर छाया हुआ है। यह आदिवासी वन की उपज पर आधारित है। अतएवं वनविभाग के कर्मचारी तथा जगधारी राय इन आदिवासियों का शोषण करते हैं। जब सूखा पड़ता है तब वे इनके खेत रेहन रख लेते हैं और फिर वे खेत आदिवासियों को लौटाये नहीं जाते। इन आदिवासियों की प्रमुख समस्या है—भूख। इसी के साथ वे दरिद्रता, पिछड़ापन से ग्रसित हैं। आर्थिक दृष्टि से विवश होने के कारण रायबहादुर इन्हें बंधुआ बनाकर रखते हैं। इन आदिवासियों की एक प्रमुख समस्या—विस्थापन है। उपन्यासकार ने यह प्रश्न उपस्थित किया है कि आज जंगल छोटा होता जा रहा है और

इतिहास बड़ा। पर प्रतिदिन इतिहास में नये-नये अध्याय जोड़ती ये दुनिया जंगल में बसे छोटे-छोटे गाँवों को क्या दे रही हैं? इसका उत्तर यह है कि इन आदिवासियों को अभाव की जिंदगी मिली है। शोषण इनका स्थायी भाव है।

### पार – वीरेंद्र जैन (1994)

समसामायिक युग में वीरेंद्र जैन आदिवासी केंद्रित उपन्यासों का सृजन कर रहे हैं। उनके उपन्यास 'डूब' और 'पार' आदिवासियों से संबंधित उपन्यास हैं। 'पार' उपन्यास में मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश की बुंदेलखंड सीमा पर स्थित बेतवा नदी के क्षेत्र में लड़ैई गाँव की कथा है। इस क्षेत्र में जीरोन खेरा आदिवासी रहते हैं। यहाँ के आदिवासी स्वयं को राउत कहते हैं। उपन्यास का कथानक पंद्रह भागों में विभाजित है। जिन्हें दो भागों में विभाजित किया गया है। अध्याय 1 से लेकर 7 भागों को 'पार' शीर्षक और 8 से 15 भागों की कथा को 'अ-पार' शीर्षक दिया गया है। इस उपन्यास में दो गाँवों जीरोन और लड़ैई में स्थित आदिवासियों की कथा-व्यथा है। आदिवासी समाज में पंचायत व्यवस्था का विशेष महत्व होता है। पंचायत के प्रमुख को मुखिया के रूप में सम्मान दिया जाता है। उसकी सलाह से ही समाज नियंत्रित और नियमित होता है। यही मुखिया अगले मुखिया का नाम घोषित करता है। जिसे गुनिया कहा जाता है जो बाद में मुखिया कहलाता है। मुइया के बेटे को गुनिया के रूप में चुन लिया जाता है। इसलिए मुइया माई का सम्मान प्राप्त करती है। परंतु उसका यह बंधन होता है कि वह किसी पुरुष से सहवास नहीं करेगी। परंतु मुइया अपने देह की आग को दबा नहीं पाती। इसलिए उसका यह मुखिया माई का पद छीनकर फुलिया को दिया जाता है।



लडैई गाँव का माते उपन्यास का प्रमुख पात्र है। वह जीरोन खेरे की आदिवासी महिलाओं के काम—धंदे के लिए लडैई आने पर उनकी सहायता करता है। जब जीरोन खेरे की अक्कल नामक लड़की मंदीर में पूजा करने के लिए जाती है तो वहाँ बामन महाराज का पुत्र उसके साथ शारीरिक संबंध रखता है। वह कुमारी अवस्था में पुत्र को जन्म देती है। तब माते उसकी सहायता करता है। अक्कल के पुत्र को गोरा बेन पालती है और उसका नाम रामदयाल रखती है। यही रामदयाल बड़ा होने पर बांध के कारण विस्थापित होनेवालों का पक्ष लेता है। अरविंद और यशस्विनी रामदुलारे के साहित्य से प्रभावित होती है और यशस्विनी तो रामदुलारे से विवाह कर लेती है। उपन्यास में आदिवासियों का शोषण करने वाले करनेवाले निर्मल साव का चित्रण हुआ है। वह शासकीय अधिकारियों को खुश करने के लिए आदिवासी पुरुषों की नसबंदी करा देता है वह आदिवासी स्त्रियों को खरीदता—बेचता भी है।

वीरेंद्र जैन ने आदिवासी समाज के रहन—सहन का विस्तार से चित्रण किया है। सरकार आदिवासी क्षेत्र के विकास के हेतु बांध परियोजना बनाती है। परंतु इससे आदिवासी उजड़ते हैं। जीरोन खेरा की स्त्रियाँ लडैई और आसपास की गाँवों में जाती हैं। चिरोंजी, गोंद, जलावन बीनना, तेंदू, करवंदे, खिवनी, महुआ देने जाती हैं और इसके बदले में तेल, नमक आदि आवश्यक चीजें लाती हैं। ये स्त्रियाँ इन वस्तुओं के अतिरिक्त नाक छेदना, गोंदना, कान छेदना आदि व्यवसाय भी करती हैं। परंतु इनका मुख्य व्यवसाय तेंदु पत्ता और जलाउ लकड़ी बेचना है। इस प्रकार इन आदिवासियों की आर्थिक स्थिति दयनीय है। अतः वे साहुकार से कर्ज लेते हैं। कर्ज लेने का प्रमुख कारण विवाह और किसी की मृत्यु हो जाने पर अंत्यसंस्कार के लिए पैसा इकट्ठा करना है। इनकी आर्थिक स्थिति का फायदा उठाकर साहुकार शोषण करता है।

अशिक्षित होने के कारण इस समाज में अंधविश्वास है। नेतागण राजनीतिक स्वार्थ के लिए इनसे संबंध बनाते हैं। निर्मल साव सरकार की ओर से इन्हें आश्वासन देता रहता है। उपन्यास में नारी शोषण के कई प्रसंग चित्रित हैं। विस्थापन की समस्या से यही आदिवासी आशंकित और आतंकित रहते हैं।

समग्रतः वीरेंद्र जैन ने प्रस्तुत उपन्यास में राउत आदिवासियों की व्यथा प्रस्तुत की है। ज्ञानप्रकाश विवेक मानते हैं कि—'यह उपन्यास इसलिए भी बेहद महत्वपूर्ण है कि इसमें समयगत सच्चाईयों को बेहद साहस और ईमानदारी से प्रस्तुत किया गया है। आदिवासियों के नाम पर बदहाली की जो तस्वीर पेश होती है वह हमारी तंत्र की पोल खोलने में यकीनन कामयाब हुई है।' यह निर्विवाद सत्य है कि वीरेंद्र जैन अपने समय और स्थिति के प्रति जाग्रत साहित्यकार है। उनका यह उपन्यास उनके आदिवासियों के प्रति प्रतिबद्धता को व्यक्त करता है।

### **पाव तले की दूब – संजीव (1995)**

संजीव का 'पाव तले की दूब' का प्रकाशन सन् 1995 में हुआ। इसमें झारखंड क्षेत्र में स्थित आदिवासियों का चित्रण हुआ है। औद्योगिकीकरण के कारण इन आदिवासियों को विस्थापन की त्रासदी भोगनी पड़ी है। जो धरती सोना उगलती थी उस सोने की धरती के ये आदिवासी संतान हैं। झारखंड राज्य का निर्माण 15 नवंबर 2000 में हुआ। परंतु उसके निर्माण के लिए जो आंदोलन हुआ उसमें आदिवासियों की अहम् भूमिका रही है। उपन्यासों में तीन आयामों को चित्रित किया गया है वे हैं—झारखंड आंदोलन, औद्योगिकीकरण की समस्या और आदिवासी जीवन। औद्योगिकीकरण के कारण आदिवासियों का विकास तो नहीं हुआ परंतु वे विस्थापित होने

के लिए बाध्य हो गये। उपन्यास का प्रमुख चरित्र सुदीप्त है। वही आदिवासियों को जाग्रत करना चाहता है। आदिवासियों के संबंध में शासन के दोगलेपन को देखकर वह क्रोधित होता है। सुदीप्त को यह कहा जाता है कि वह आदिवासी नहीं है फिर आदिवासियों की चिंता क्यों कर रहा है। तब उसका उत्तर है—‘हाल में बैठकर साउथ आफ्रिका में काले लोगों पर होनेवाले अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाते है उन्हें सपोर्ट करते है इसका कारण मानवीयता है।’

उपन्यास में झारखंड के पंच पहाड़, बागकुंडी होकरी अंचल का वर्णन हुआ है। इसी पृष्ठभूमि में आदिवासियों की समस्या प्रस्तुत हुई है। उपन्यासकार के शब्दों में—“अरण्यमुखी संस्कृति उन्हें सभ्यता के विकास से जुड़ने नहीं देती और उत्सवधर्मिता इन्हें कंगाल बनाती रहती है।” आदिवासियों का शोषण महाजन ठेकेदारों के द्वारा होता है। भारत के विविध क्षेत्रों में बिखरे आदिवासी अशिक्षा के कारण अंधविश्वासी है। इस उपन्यास में भी अंधविश्वास के कारण ओझा आदिवासियों का शोषण करता है। किसी स्त्री पर डायन होने का आरोप कर उसे मार दिया जाता है। इस समाज की स्त्रियाँ पुलिस, ठेकेदारों के द्वारा शोषित होती है। उपन्यास में आदिवासियों की लोकसंस्कृति का भी चित्रण हुआ है। उपन्यास में आदिवासियों को जाग्रत करनेवाला सुदीप्त जंगल की आग में जलकर शहीद हो जाता है। उसकी मृत्यु के पश्चात् आदिवासी उसकी प्रेरणा से विधायक कार्य करते है। वे सुदीप्त की इच्छानुसार एक नई दुनिया बसाना चाहते है। उनमें वैचारिक परिवर्तन भी होता है। वे अंधश्रद्धा को त्यागने का प्रयत्न करते है।

उपन्यास का सबसे प्रमुख प्रसंग झारखंड आंदोलन है। इस आंदोलन में इंटक युनियन के साथ नक्सलवादी संपृक्त हो जाते है। झारखंड आंदोलन के नेता माधव हंसदा आदिवासियों

का सर्वांगीण विकास करना चाहते हैं, उनकी आर्थिक स्थिति सुधारना चाहते हैं, उनका सामाजिक विकास करना चाहते हैं। इस आंदोलन में आदिवासी और गैर आदिवासियों में टकराहट होती है।

समग्रतः विवेच्य उपन्यास पिछड़े हुए क्षेत्र झारखंड में स्थित आदिवासियों की व्यथा-कथा है।

### **काला पहाड़ – भगवानदास मोरवाल (1996)**

भगवानदास मोरवाल का 'काला पहाड़' उपन्यास जो 1996 में प्रकाशित हुआ उसमें भारतीय आदिवासी मुसलमानों को दृष्टिपथ में रखा गया है। उसमें मेव जाति का चित्रण हुआ है। संपूर्ण उपन्यास में आदिवासी विमर्श है। जिसमें लोकसंस्कृति का निरूपण किया गया है। इस कथ्य का अंचल हरियाण, उत्तर प्रदेश और राजस्थान की सीमा पर स्थित मेवात है। उपन्यासकार के शब्दों में –“काला पहाड़ ऐसे ही बुरे समय में अपने डैने फ़ैलाकर उन निरीहों को आश्रय देता है जो उसकी ओर लपके हुए आते हैं। सच अगर आज भी यह काला पहाड़ आश्रय प्रदान नहीं करता तो पता नहीं तब ये खाकी वर्दियाँ और कितना जुल्म ढातीं।... यहाँ आकर लगता है। मानो निश्चितता की ताजा हवा सुगंधहीन टेसुओं से चुहलबाजी करती घूम रही है।”<sup>2</sup>

इस क्षेत्र में आदिवासी मेव और हिंदू संवेदनात्मक धरातल पर मिल-जुलकर रहते हैं। यद्यपि तथाकथित स्वार्थी जन सांप्रदायिकता की भावना को भड़काते हैं फिर भी शांति और सदभावनापूर्ण जीवन का यहाँ अंत नहीं होता है। यह इस क्षेत्र की कथा है। उसी क्षेत्र के छोटे

से कस्बे नगीना में मोरवाल का जन्म हुआ। इसलिए यहाँ के परिवेश से वे चिर-परिचित हैं। इसलिए उनका यह उपन्यास यथार्थवादी है। मेव जाति अपने को सूर्यवंशी, चंद्रवंशी क्षत्रिय मानती है। इसलिए उनकी परंपराएँ, उनके रीति-रिवाज, उनके सोचने का ढंग हिंदुओं के निकट है। देश विभाजन के समय मेवात में सांप्रदायिक भावना नहीं पनपी। परंतु बाबरी मस्जिद के समय हिंदू और मुस्लिम जाति में वैमनस्य व्याप्त हो गया। यही प्रस्तुत उपन्यास का कथ्य है।

उपन्यास का प्रारंभ इस क्षेत्र के महू गाँव के प्रधानमंत्री के आगमन से होता है यह गाँव काले पहाड़ की घाटी में बसा है। उनके आने का उद्देश्य सन् 1857 में अंग्रेजों से लड़ते हुए जो मेव आदिवासी शहीद हो गये थे उनके मीनार का शिलान्यास करना था। आदिवासी मेवातो की समस्या यह है कि राजनेताओं और शासन के द्वारा समय-समय पर घोषणा की जाती है कि इन आदिवासियों के कल्याण के लिए कारखाने लगाये जायेंगे, बेकारों को काम मिलेगा, स्कूल की स्थापना होगी, अस्पताल में निःशुल्क सेवा प्रदान की जायेगी। परंतु स्थिति यथावत बनी रहती है। डॉ. कुँवरपाल सिंह के शब्दों में—“समूचा उपन्यास मानो इस ‘भरोसा उठने’ की प्रक्रिया को उद्घाटित करने का अथक प्रयास है। इस क्रम में लेखक राजनीति, सत्ता, अर्थव्यवस्था, विकास की प्रक्रिया को सभी को खँगालता है। और उनकी जिजीविषा तथा जीवट को भी रेखांकित करता है, जिन्हें निम्न जाति का और तिरस्कृत समझा जाता है।”<sup>3</sup>

यद्यपि सलेमी, मनीराम, रोबड़ा, सुलेमान, छोटेलाल, बाबूखँ आदि क्षत्रिय हैं। परंतु धर्मांतरित होकर वे मुस्लिम हो गये हैं। फिर भी वे अपने आपको मेव ही मानते हैं। महात्मा गांधी ने तो एक सार्वजनिक सभा मेव जाति की प्रशंसा करते हुए इनकी बहादूरी और साहस की प्रशंसा की है। उन्होंने तो यह तक कहा कि मेव जैसी कौम भारतीयों की शक्ति और प्रेरणा है।

परंतु बाबरी मस्जिद के कांड के बाद मेव आदिवासी मेवात को छोड़कर जाने लगे। यद्यपि सलेमी उन्हें रोकना चाहता है। परंतु कोई रुकता नहीं है। वैसे भी मेवात में राजनीति का षड़यंत्र व्याप्त होने लगा था। तब मेव सोचते हैं कि विभाजन के समय उन्हें पाकिस्तान चले जाना चाहिए था। आज उन्हें जो भुगतना पड़ रहा है वह तो भुगतना नहीं पड़ता।

‘काला पहाड़’ उपन्यास में मेवात के भौगोलिक परिवेश के साथ इनकी सांस्कृतिक परंपरा व्यक्त हुई है। काला पहाड़ उपन्यास की समीक्षा करते समय डॉ. विजय बहादुर सिंह लिखते हैं—“ऐसे मुश्किल समय में सलेमी ऐसी देशभक्त, देशप्रेमी, बल्कि कहिए इस देश के मूल निवासी आखिरी उम्मीद करें तो किससे करें? काला पहाड़ इन्हीं की चिन्ता की गाथा है।”<sup>4</sup> उपन्यास में स्वार्थी राजनेताओं का सांप्रदायिकता को भड़काने का चित्रण हुआ है। इस उपन्यास में मेवात आदिवासियों की संस्कृति का विस्तार के साथ चित्रण हुआ है।

### **जहाँ बाँस फूलते हैं – श्रीप्रकाश मिश्र (1997)**

श्रीप्रकाश मिश्र द्वारा रचित ‘जहाँ बाँस फूलते हैं’ उपन्यास सन 1997 में प्रकाशित हुआ। इसमें सुदूर उत्तर-पूर्व मिजो में स्थित आदिवासी लुशेइयों के जीवन को चित्रित किया गया है। इस आदिवासी समाज की त्रासदी यह है कि वे फसल बोते हैं, मेहनत करते हैं और जमींदार आकर पक्की फसल कटवाकर ले जाते हैं। परिणाम यह होता है कि—“भूख का मारा मिजो कुछेक वर्षों तक इंतजार करता था, फिर जंगल को साफ कर धान लगा जाता था फसल जब तैयार होने को होती थी, तब अपना झोपड़ा बनाया जाता था। फिर एक दिन रात को इलाके के पुराने जमींदार रामनाथ लश्कर और मुश्ताक खांडकार अपने हाथियों के साथ आ धमकते, इनके

घरों को उजाड़ फसल काट कर ले जाते और खेती लायक जमीन दो-चार साल के लिए कब्जा कर लेते थे।”<sup>5</sup>

इन आदिवासियों की समस्या यह है कि यदि वह अपने अधिकार माँगते हैं तो उन्हें नक्सली मान लिया जाता है। इसलिए ये दहशत में अपना जीवन बिताते हैं प्रस्तुत उपन्यास में लुशेइयों का जीवन जीने का संघर्ष, उनके रीति-रिवाज, परंपराओं को विस्तार से वर्णित किया गया है। प्रो. बी. के. कलासवा लिखते हैं—“वहाँ का तथ्यपरक जीवन और दास्तान इस तरह से प्रस्तुत हुआ है कि इससे गुजरते हुए आप वहाँ की पहाड़ियों की ऊँचाई, कटानों का तीखापन, नदी का बहाव, आसमान की चमक, भूख से ऐंठते आदमी का रंग, बूटों की आवाज, षिकारी की चालाकी, हवा की छुअन, धूप की गर्मी अपनी नस-नस में महसूस करेंगे और पायेंगे कि इस तरह उन्होंने हिन्दी साहित्य और उसके माध्यम से भारतीय आदिवासी अस्मिता को रेखांकित किया है।”<sup>6</sup> शासन की घोर उपेक्षा के कारण आदिवासी समाज वंचित है। इनमें असंतोष व्याप्त है और ये आदिवासी अलग राज्य की माँग करते हैं। उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास में यह समस्या उठाई है कि मिजोराम में विद्रोह की चिनगारी क्यों व्याप्त है।

‘जहाँ बाँस फूलते हैं’ में आदिवासियों का आक्रोश है। आर्थिक और सामाजिक विषमता के कारण उनका आक्रोश व्यक्त होता है। जब यह आदिवासी गांधीवादी बनकर शांति से विरोध करते हैं तब लालडेडा क्रोधित होकर यही कहता है कि—“मिजो बंधुओं! बहुत दिनों से ये धनी लोग, ये वाई लोग लोगों का सुख अपनी तिजोरियों में कैद रख चुके हैं। गरीबों का आहार इनके गोदामों में मूल्य-वृद्धि की प्रतीक्षा करते-करते सड़ रहा है। समय आ गया है कि ये अब अपनी तिजोरियों और गोदामों से महरुम हों। उनकी अट्टालिकाओं को गिरा दिया जाए और सारे वित्त

को इन धरती के बेटों—इन झुके लोगों में बाँट दिया जाए। समय आ गया है कि लुशाई हिल्स के सपूत उठें और इस निहंग धरती का भाग्य बदल दें...।”<sup>7</sup> इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में आदिवासियों पर जमींदारों, पुलिस और शासन के द्वारा अत्याचार होते हैं। अतएवं ये मिजो भारत देश से अलग होना चाहते हैं। उनका अभिमत है कि वे मन से भारतीय गणतंत्र में नहीं रहना चाहते। उन्हें गुलाम बनाये रखने के लिए दिल्ली के शासकों ने सदैव प्रयास किया है। अतः उन्हें उनकी आजादी के लिए लड़ना होगा। मिजो में जो आंदोलन हो रहे है प्रमुख रूप से उनकी एक ही माँग है—‘हमें भोजन दो।’ बोइछुआका तो स्पष्ट शब्दों में कहता है—“हम भूख की आग में जलते—जलते धैर्य की सीमा खोते जा रहे हैं—। पर वाई सरकार में इतना धैर्य है कि हमारे कराल रुदन पर दया आने को कौन कहे, उसके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। दिल्ली से गुआहाटी और गुआहाटी से आइजाल तक फैला यह प्रशासन का डाइनासार जरा भी हरकत में नहीं आता...” किसी ने बीच में ही टोका, “इस डाइनासार को मार डालो।” और हँसी का फौवारा फूट पड़ा। बोइछुआका ने बोलना जारी रखा, “हम एक बार और डिप्टी कमिश्नर साहब के माध्यम से असम सरकार को जता देना चाहते हैं कि मिजो जनता अब और भूखी नहीं रह—सकती..।”<sup>8</sup>

इन आदिवासियों का शोषण ‘वाई’ करते हैं जो व्यापारी है। ये आदिवासियों के विकास के लिए आई राशि को अपनी जेब में रखते है। यहाँ का अदरक, मिट्टी का तेल ले जाकर अपने वतन में सोना बनाते है और आदिवासी स्त्रियों का शोषण करते है।

समग्रतः प्रस्तुत उपन्यास में पुलिस द्वारा आदिवासियों पर हो रहे अन्याय का चित्रण हुआ है। सरकारी तंत्र आदिवासियों के घरों की तलाशी के नाम पर उनको तहस—नहस कर रहा है। तलाशी के नाम पर बरतन फोड़ दिए, रुपये हथियों लिये, प्रौढ़ाओं के कपड़े फाड़ दिए।



लोगों को घसीट-घसीट कर मैदान में लाया गया। छोटे मासूम बच्चों, अस्सी साल के कमजोर, बीमार, वृद्धा, प्रौढ़ाएँ युवक सब पर जुल्म ढाया गया और गाँव में आग लगा दी गई। ये प्रसंग मिजोराम में स्थित आदिवासियों के शोषण के प्रमाण हैं।

### **अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा (2000)**

मैत्रेयी पुष्पा महिला उपन्यासकारों में एक सशक्त हस्ताक्षर है। उन्होंने 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में कबूतरा जनजाति को दृष्टि में रखकर 390 पृष्ठों में यह उपन्यास लिखा। आदिवासी केंद्रित उपन्यासों में यह उपन्यास विशेष उल्लेखनीय है। यह उपन्यास 18 अध्यायों में निमग्न है। उपन्यास का परिप्रेक्ष्य बुंदेलखंड क्षेत्र के कबूतरा नामक आदिवासी समाज है। उपन्यास में दो समाज वर्णित हैं। एक आदिवासी कबूतरा समाज तो दूसरा सभ्य समाज जिसे आदिवासी कबूतरा 'कज्जा' कहते हैं। उपन्यास का प्रारंभ मंसाराम माते और आदिवासी कदमबाई के जीवन कथा से होता है। मंसाराम के पिता 50 बीघे जमीन के मालिक है। जिनमें से दो बीघे जमीन पर कबूतराओं ने डेरा डाल रखा है। पिता के असामायिक निधन के कारण मंसा पर पारिवारिक दायित्व आ जाता है। मंसाराम कदमबाई के सौंदर्य पर मोहित हो जाता है। परंतु दोनों विवाहित हैं। कदमबाई के पति की हत्या हो जाने के बाद मंसाराम और कदमबाई एक दूसरे के प्रेमी बन जाते हैं। उन दोनों में देहिक संबंध स्थापित हो जाता है। इस सबसे मंसाराम का पुत्र जोहरा क्रोधित होता है और एक दिन पिता की गर्दन पकड़ लेता है। अतः मंसाराम कज्जा परिवार को छोड़कर कबूतरा बस्ती में साझीदारी में शराब की भट्टी शुरू करता है।

मंसाराम और कदमबाई के पुत्र राणा को पढ़ाई के लिए रामसिंह के पास भेजा जाता है। वह रामसिंह की युवा पुत्री अल्मा से प्रेम करने लगता है। परंतु डाकू बेटासिंह अल्मा को भगा ले जाता है। वह अपने पिता की रक्षा के लिए डाकू के जुल्मों को सहती है। इस कबूतरा आदिवासियों पर पुलिस और डाकूओं के भी अत्याचार होते हैं। अल्मा अपनी बिरादरी को बचाने के लिए राजनीति में प्रवेश करती है और सफल भी होती है। उसके संबंध में लेखिका लिखती है—“अल्मा माने आत्मा, बप्पा ने सोच-समझकर नाम रखा था, कहते थे आत्मा नहीं मरती।”<sup>9</sup> अपने नाम को सार्थकता प्रदान करते हुए अल्मा आजीवन संघर्ष करती है। उपन्यास में आदिवासी कबूतरा समाज के परिवेश, नारी की स्थिति और गति, राजनीतिक परिवेश के साथ धार्मिक और सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण हुआ है। कबूतरा आदिवासी चोरी करना और शराब बनाकर बेचना व्यवसाय अपनाते हैं। इसका एक कारण उनकी आर्थिक दुर्बलता है। उपन्यास में इस आदिवासी समाज के आर्थिक जीवन को व्यक्त किया गया है।

### **जंगल जहाँ शुरू होता है— संजीव (2000)**

आदिवासी जीवन को सही अर्थ में न्याय देनेवाले लेखक संजीव का उपन्यास ‘जंगल जहाँ शुरू होता है’ का प्रकाशन सन् 2000 में हुआ। इसमें बेतिया क्षेत्र के थारु आदिवासियों के जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। इस उपन्यास में थारु जनजाति, सामान्य जन, डाकू, पुलिस और प्रशासन, राजनीति, धर्म, समाज और व्यक्ति का चित्रण हुआ है। उपन्यास का केंद्र पश्चिमी चम्पारण है जो मिनी चंबल के नाम से जाना जाता है। उपन्यासकार ने इस क्षेत्र की बारह वर्ष निरंतर यात्रा की। तत्पश्चात् यह अरण्यगाथा प्रस्तुत की है। यह उपन्यास जितना रंजक है उससे कहीं अधिक भयावह स्थितियों को चित्रित करता है। आदिवासियों की स्थिति, उनकी नियति,

उनकी त्रासदी उपन्यास का केंद्र है। विवेच्य उपन्यास के संदर्भ में प्रा. यशवंतकर लिखते हैं—“संजीव ने आदिवासियों की दशा और परिणामों का विवेचन मानवीय संवेदना के परिप्रेक्ष्य में किया है अर्थात् उपन्यासकार ने उनकी त्रासदी और संघर्ष को वाणी देने का प्रामाणिक प्रयत्न किया है।”<sup>10</sup>

उपन्यास का प्रारंभ पुलिस उपअधीक्षक कुमार के साथ प्रारंभ होता है जो आदिवासी क्षेत्र में डाकुओं का सफाया करने के लिए भेजा गया है। परंतु इस उपन्यास में दस्युकथा के साथ आदिवासियों की शोषणगाथा भी प्रस्तुत हुई है।

इस क्षेत्र में रहनेवाले आदिवासी बैल चुराकर, लकड़ियाँ बेचने तक का कार्य करते हैं। ठेकेदारों, राजनीतिज्ञों, जमींदारों के अत्याचारों के कारण इस समाज में बिसराम जैसे डाकू बन जाते हैं। उपन्यास में यह दर्शाया गया है कि थारू समाज विवश समाज है। इन आदिवासियों का आर्थिक शोषण तो होता ही है परंतु इस समाज की स्त्रियाँ देहिक शोषण के लिए विवश हैं। काली सुन्नर पांडे के यहाँ काम करता है। परंतु जब वह अपनी मजदूरी की माँग करता है तो उसे निराश होना पड़ता है। इस व्यवहार से काली के मन में आक्रोश उत्पन्न होता है और वह अपराध की दुनिया में कदम रखता है। बिसराम के डाकू बनने का कारण ही त्रासद परिस्थिति है। पहले चीनी मिल बंद हुई, फिर उसका खेत चला गया, पत्नी मृत्यु से जूझ रही है, बेटी को साँप ने डस लिया है। इन परिस्थितियों से वह डाकू बन जाता है। यहाँ के आदिवासी दोहरी स्थिति में जी रहे हैं। एक ओर तो वे स्वयं भयंकर आर्थिक संकट में हैं तो दूसरी ओर डाकुओं का आतंक है। डाकुओं के आतंक के कारण आदिवासियों को उनके आदेश पर खाना बनाकर भेजना पड़ता है। यद्यपि इसके लिए वे उन्हें पैसे देते हैं। डाकुओं को खाना भेजने के अपराध में

पुलिस बिसराम की पत्नी को कैद कर लेती है। इस प्रकार थारू आदिवासी पुलिस और डाकू दोनों के अत्याचारों से त्रस्त-ग्रस्त है। आदिवासियों को आर्थिक अभाव में जीना पड़ता है। जीवन जीने का कोई साधन उनके पास नहीं है। इस स्थिति को लेखक ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—‘जंगलों में बेंत है, आदमी में हुनर है, झूंडी खाँची बना ही सकता है, लेकिन उसे लाने कौन देगा, बेंत का ठेकेदार एक जल्लाद...कहाँ से आए घूस पॉति के लिए।’ इसलिए यहाँ की स्त्रियाँ नशीली वस्तुओं की तस्करी करने लगी है। वे इन चीजों को कमर में बाँधती है ताकि उन्हें गर्भवती समझकर कोई उनकी शिनाख्त न करें। डाकू बहुल क्षेत्र में औरतों को खरीदने-बेचने का व्यवसाय भी फैला हुआ है।

प्रस्तुत उपन्यास में अपराधीकरण ओर राजनीति की साँठ-गाँठ को चित्रित किया गया है। वोट प्राप्त करने के लिए आदिवासियों को खुश किया जाता है। इसके लिए डाकूओं की मदद ली जाती है। थारूओं, धांगड़ों, मल्लाहों, नोनिओं के वोट प्राप्त करने के लिए सभी राजनीतिक दल काली को पकड़ने का प्रयत्न करते हैं। उपन्यास में पुलिस कभी भी गाँव आती है और आदिवासियों को मारती-पीटती है। आदिवासियों के साथ पुलिस का व्यवहार अत्यंत क्रूर है। पुलिस के आतंक के कारण अनेक थारू गाँव छोड़कर चले जाते हैं। इसलिए मलारी काली से कहती है—‘डाकू का विश्वास कर लेना, लेकिन किसी हाकिम का विश्वास मत करना।’ इस प्रकार आदिवासी पुलिस से अधिक डाकूओं पर विश्वास करते हैं।

समग्रतः संजीव का उपन्यास ‘जंगल जहाँ शुरु होता है’ आदिवासी जीवन का यथार्थ दस्तावेज है जिसमें थारू जाति के दुःख, उन पर होने वाले अन्याय, अत्याचार, शोषण, नारी की दुर्दशा आदि स्थितियों को देखा जा सकता है।

## काला पादरी – तेजिन्दर (2002)

तेजिन्दर द्वारा लिखित 'काला पादरी' उपन्यास सन् 2002 में प्रकाशित हुआ। मध्यप्रदेश में बसे इन आदिवासियों की स्थिति अत्यंत दर्दनाक है। भूख इनकी प्रमुख समस्या है। इसलिए यह आदिवासी जंगलों की जहरीली जड़ी बूटियाँ खाते हैं। बिल्ली और बंदरों का शिकार कर इनका मांस खाते हैं। इस भूख की समस्या से कई आदिवासियों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया है। उपन्यास का एक प्रमुख पात्र जेम्स खाखा एक आदिवासी था परंतु उसने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। जब भूख के कारण एक आदिवासी बीमार पड़ जाता है तब उसे झाड़-फूक के लिए बैगा के पास ले जाते हैं। तब खाखा स्पष्ट शब्दों में कहता है कि—'इस आदमी को देवता नहीं चावल बचा सकते हैं।' यह आदिवासी भोले-भाले होते हैं। इसलिए इन्हें रोटी-दवाईयाँ आदि का लालच दिखाकर ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए विवश किया जाता है। डॉ. संजीव कुमार दुबे का अभिमत है कि—'काला पादरी' काले यूरोप में बदल चुके सरगुजा अंचल के आदिवासियों के अतीत और वर्तमान का ऐसा आख्यान है जो आदिवासी अस्मिता के उदय और भविष्य के नये स्वप्न का संकेत देता है। धार्मिक और राजनीतिक रूप से बिल्कुल उदासीन इस अंचल के आदिवासियों को धार्मिक पहचान देने और अपना स्वार्थ साधने की सामंती और मिशनरी कोशिशों का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत करता है काला पादरी।'<sup>11</sup>

उपन्यास का नायक जेम्स खाखा फादर से पूछता है—'क्या यह सच नहीं कि हमारी इमेजेज में पहाड़ थे, नदियाँ थीं, पेड़ थे, षेर थे, चीते थे और राजा ने हमें बंधुआ बना दिया, फिजिकली और इकोनॉमिकली एक्सप्लायट किया, लेकिन आपने क्या किया? यू रादर टेम्स अस, आपने हमें पालतू बना दिया, हमारे लिए हिन्दू फंडामेंटलिस्टों और आप में कोई खास फर्क नहीं

है। हमारी इमेजेज छीन ली आप लोगों ने।<sup>12</sup> इस उपन्यास में आदिवासियों में व्याप्त अंधविश्वास, कर्मकांड, भूखमरी, अकाल, सामंतवाद आदि का गहन चित्रण हुआ है। वास्तव में लोग भूख से मरते हैं परंतु बैगा का मत है कि इनके शरीर में दुष्ट आत्मा ने प्रवेश किया है। दूसरी ओर ब्रदर हरपाल चंगाई शिबीर चलाते हैं और कहते हैं कि भूख से पीड़ित सिर्फ एक व्यक्ति को चंगा कर सकते हैं।

समग्रतः 'काला पादरी' उपन्यास आदिवासियों के त्रासदमय जीवन को उभारता है। एक ओर ईसाई मिशनरी है तो दूसरी ओर हिन्दू संगठन है और इन दो पाटों के बीच में आदिवासी फँसा हुआ है।

### **पठार पर कोहरा – राकेश कुमार सिंह (2003)**

राकेश कुमार सिंह का 2003 में 'पठार पर कोहरा' उपन्यास प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास झारखंड के आदिवासियों पर केंद्रित है। उपन्यास के कथ्य को पाँच भागों में विभाजित किया गया है। इसके पहले भाग या खंड का नाम 'जंगल जहाँ से शुरू होता है' इसमें कथानायक संजीव का गजलीठोरी पहुँचना और रंगेनी के घर पहुँचने की कथा है। इस भाग में संजीव और रंगेनी दोनों की जीवन कथा साथ-साथ चलती है। दूसरे खंड का शीर्षक है 'ठहरिए आगे जंगल है' में संजीव के गजलीठोरी के रंगेनी के घर आश्रय लेना वर्णित है। इसके पश्चात् सादरभृणों के साथ उसका संपर्क दिया गया है। जिसमें दोनों में आदिवासियों को लेकर चर्चा-परिचर्चा होती है। तीसरे खंड 'कोहरे में अकेले' नाम से है। चतुर्थ खंड में 'कोहरे के विरुद्ध' में आदिवासियों के संघर्ष का चित्रण है और पाँचवा खंड 'यह अंत नहीं' इस नाम से है।

जिसके माध्यम से उपन्यासकार ने यह चित्रित किया है कि आदिवासियों की लड़ाई जारी है। अंग्रेजों ने अपनी शक्तियों द्वारा रेड इंडियन का समूल नाश कर दिया परंतु अंग्रेज झारखंड के आदिवासियों का मूल उच्छेद करने में असफल रहे। इसका कारण यह है कि आदिवासी जनजीवन की जो उनकी संस्कृति, उनके रीति-रिवाज पूर्ण रूप से भिन्न थे। आदिवासी कल्याण की सरकारी योजनाएँ आदिवासियों तक नहीं पहुँच पा रही हैं। जिसे साहुकार, सरकारी अधिकारी और बंदूकी संस्कृति का स्वीकार करने वाले तथाकथित लोग हड़प कर लेते हैं। इस उपन्यास में शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का प्रणयन हुआ है। उपन्यास का नायक संजीव है जो शिक्षक के रूप में झारखंड के आदिवासी क्षेत्र में पहुँचता है। उसी के माध्यम से लेखक ने झारखंड के आदिवासियों के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति का चित्रण किया गया है।

‘पठार पर कोहरा’ में आदिवासियों के शोषण को केंद्र में रखा गया है। कभी ठेकेदार, कभी सूदखोर, तो कभी व्यापारी उन्हें ठगते हैं। सरकारी कर्मचारी तो इस समाज का शोषण अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। आतंकवादी संगठन इन्हें आतंकित करते रहते हैं। लूट और ठगी के चक्रव्यूह में फँसा हुआ यह वनवासी सरकारी योजनाओं से पूर्णरूप से वंचित है। आदिवासियों के लिए मंजूर की गई योजनाएँ तथाकथित व्यापारियों, ठेकेदारों, सरकारी कर्मचारियों के लिए मलाईदार परत हैं। इन आदिवासियों की त्रासदी यह है कि वह –‘वह महाजन के घर जन्म लेता है, बाबू की बेगारी में खटता है, और साहू के कर्ज में मर जाता है’

राकेश कुमार सिंह ने एक प्रामाणिक, कर्तव्यनिष्ठ और संकल्पशक्ति से युक्त युवा शिक्षक संजीव की कथा के साथ-साथ आदिवासियों की करुण कथा को समानांतर रूप में चित्रित किया है। सुरेंद्र दुबे इसके कथानक के संबंध में लिखते हैं कि—“यह कोई सुना-सुनायी

बातों के आधार पर या ऊपर-ऊपर से किया गया हवाई सर्वेक्षण नहीं है, बल्कि बीहड़ों में गहरे पैठकर समस्या की एक-एक परत को उघाड़ कर प्रस्तुत की गई एक सार्थक और सही तस्वीर है।<sup>13</sup> यह इधर के उपन्यासों में मील का पत्थर है। झारखंड ही नहीं, देश के किसी भी कोने में बसे वनपुत्रों का यह जीवंत दस्तावेज है।

### पिछले पन्ने की औरतें – शरद सिंह (2003)

लेखिका शरद सिंह का 'पिछले पन्ने की औरतें' का प्रथम संस्करण 2005 में प्रकाशित हुआ। अब तक इसके तीन संस्करण निकल चुके हैं। लेखिका ने प्रारंभ में ही यह मत व्यक्त किया है कि—' छिपी रहती है/ हर औरत के भीतर/ एक और औरत/ लेकिन/ लोग अक्सर/ देखते हैं सिर्फ बाहर की औरत/' इस अभिमत से सिद्ध होता है कि लेखिका ने इस उपन्यास में स्त्री जीवन के वास्तविक स्वरूप का लिखा है। उपन्यास के प्रारंभ में वे लिखती हैं कि उन्होंने इस उपन्यास में कुछ औरतों को पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है जो सदियों से सामाजिक उपेक्षा, आर्थिक विपन्नता और देहिक शोषण को नियति मानकर सहती आयी है। उषा कीर्ति राणावत प्रस्तुत उपन्यास की समीक्षा करते हुए लिखती है कि—“शरद सिंह का 'पिछले पन्ने की औरतें' की आदिवासी समाज की बेड़नियों देह व्यापार करती है। वे नाच कर पैसा कमाती है, वेश्यावृत्ति इनकी विवशता है। नृत्य के दौरान यदि कोई धनिक उसे अपनाना चाहे तो उसे सिर ढंकना कहते हैं अर्थात् वह बेड़नी उस धनिक की रखैल बन जाती है, पर उसे पत्नी के अधिकार नहीं मिलते। हों वह चाहे तो अन्य पुरुषों से सम्बन्ध भी बना सकती है। सिर ढंकने वाला तब तक उसकी आर्थिक सहायता करता है, जबतक उसका मन चाहे। इनकी संतानों को पिता का नाम नहीं मिलता।”<sup>14</sup>



उपन्यास लेखिका के शोध का परिणाम है। मध्यप्रदेश में बस यात्रा करते समय श्यामा नामक आदिवासी स्त्री से परिचय हुआ और उसके माध्यम से बेड़नी की विवशता ज्ञात हुई। बुंदेलखंड के बीहड़ जंगलों में सदियों से जीवन जी रहे आदिवासी समाज को दृष्टिकेन्द्र में रखा गया है। उपन्यास में पुरुषों के बजाय स्त्रियों के जीवन को व्यक्त किया गया है। इस आदिवासी समाज में परिवार की आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए स्त्रियाँ 'बेड़नी' अथवा 'नचनारी' कहलाती हैं। इस समाज का पुरुष वर्ग चोरी करता है और निकम्मा और आलसी जीवन बिताता है। इस समाज की स्त्रियाँ नाच-गाकर खेत में सामान बेचकर अथवा चोरी करके आर्थिक समस्या हल करती हैं। इन स्त्रियों का 'राई' नृत्य पुरुष को आकर्षित करता है। परिवार में दो बेटियाँ होने पर एक बेटी का विवाह कर लिया जाता है और दूसरी 'राई' नृत्य करते हुए 'बेड़नी' बनना चाहती है। विवाहिता स्त्रियाँ भी देह व्यापार करती हैं। परिवार में देह-व्यापार करना अनुचित नहीं समझा जाता क्योंकि यह परिवार का आर्थिक माध्यम होता है। नृत्य से आकर्षित धनिक यदि नर्तकी को अपनी बनानी चाहता है तो उसे 'सिर ढकना' करना पड़ता है। इसके लिए एक निश्चित राशि देनी पड़ती है। इस प्रक्रिया के बाद वह उस धनिक की उपपत्नी या रखेल बन जाती है। संपूर्ण उपन्यास में इसी 'बेड़नी' स्त्रियों की व्यथा को व्यक्त किया गया है।

इस समाज की यह विशेषता है कि इसमें पुत्री का जन्म वरदान माना जाता है। क्योंकि वह भविष्य में परिवार की आर्थिक सहायता करती है। बेड़नी को अपनी माँ, बहन, भाभी, तथा परिवार के पुरुष सदस्यों का आर्थिक भार उठाना पड़ता है। इन स्त्रियों का शोषण परिवार के अकर्मण्य पुरुष तो करते ही हैं। साथ ही दलाल, ग्राहक भी करते हैं। इन स्त्रियों की स्थिति यह है कि ये नृत्य के द्वारा पर्याप्त धन प्राप्त न करने के कारण देह व्यापार करती हैं। समाज के

जमींदार, ठाकुर परिवार की स्त्रियाँ भी अपने पति का बेड़नियों से संबंध होने पर किसी प्रकार रोष व्यक्त नहीं करती है। क्योंकि इन बेड़नियों को पुरुष वर्ग रखेल बनाकर अपने परिवार में नहीं लाता है। यही इनकी व्यथा है कि जिन ठाकुरों, जमींदारों की पत्नियों समाज में मुखपृष्ठ की औरतें बनकर सम्मानित पद प्राप्त करती है। वहीं ये बेड़निया 'पिछले पन्ने की औरतें' बनकर उपेक्षित रहती है। उपन्यास में प्रवाहात्मकता होने के कारण रोचकता है। रिपोर्ताज शैली में लिखा यह उपन्यास यथार्थवादी कहा जा सकता है।

### **रेत – भगवानदास मोरवाल (2008)**

भगवानदास मोरवाल का उपन्यास 'रेत' सन् 2008 में प्रकाशित हुआ। यह कंजर समाज पर केंद्रित उपन्यास है। कंजर अर्थात् काननचर, जंगल में घूमनेवाला घुमंतू, एक आदिवासी समाज। उपन्यास की कथा का केंद्र गाजूकी गाँव है। गाजूकी गाँव में स्थित कमला सदन में एवं आसपास के परिवेश में उपन्यास का कथ्य घटित होता है। कमलाबुआ इस उपन्यास का केंद्रीय पात्र है। उसके आसपास सुशिला, रुक्मिणी, वंदना, माया, पूनम रहती है। कंजर समाज में भाभी का अर्थ है—विवाहित परंतु शोषित स्त्री और इस समाज की जो स्त्रियाँ धंदा करती हैं उन्हें खिलावडी कहते हैं। कमला सदन में वेश्या व्यवसाय चलता है। इसलिए यहाँ पुलिस, राजनेता और धनवान आते रहते हैं।

कमला बुआ की कथा के साथ कई अन्य प्रसंग भी चित्रित हुए हैं। इसमें वैद्यश्री सूत्रधार के रूप में उपस्थित है। पुलिस के छापे हैं। माया और सुशिला में ग्राहक को पटाने के लिए संघर्ष होता है। उपन्यास की नायिका रुक्मिणि है।

उपन्यास का नामकरण 'रेत' सार्थक है। रेत का अर्थ है—जिसकी अपनी कोई पकड़ नहीं है। रेत की स्थिति विस्थापन जैसी होती है। रेत को हवा में उड़ाया जा सकता है। रेत में उत्पन्न कराने की उर्जा नहीं है। रेत प्रतीक है उस आदिवासी समाज की जो इस उपन्यास के केंद्र में स्थित है। उपन्यासकार लिखते हैं—“रुक्मिणी तो ऐसी रेत है जिसे जैसी चाहे हवा अपने साथ उड़ा ले जाए...जैसा चाहे पानी बहा ले जाए और तो और जिसके जी में आए अपनी मुट्ठी में कैद कर ले जाए। क्या है इसका अपना, कुछ भी तो नहीं। भला रेत का भी अपना कोई वजूद होता है?”<sup>15</sup>

सन् 1924 में जनजाति अधिनियम बना जिसमें इस कंजर समाज को भी लिया गया है। फलस्वरूप कंजरों को थाने में हाजिरी देनी पड़ती थी। इस आदिवासी समाज का मुख्य व्यवसाय है—चोरी करना, शिकार करना और स्त्रियों वेश्या व्यवसाय करती है। इस उपन्यास की नायिका रुक्मिणी को केंद्र में रखकर कहानी का ताना—बाना बुना गया है। उपन्यास में तीन प्रकार की स्त्रियों का चित्रण हुआ है— एक वे स्त्रियाँ हैं जो व्यवसाय करती हैं और इसमें किसी प्रकार का संकोच नहीं होता क्योंकि वे परंपरागत है। कमला बुआ, सुशिला, माया, रुक्मिणी, वंदना, पूनम, पिकी आदि इसी प्रकार की स्त्रियाँ हैं। दूसरी वे स्त्रियाँ हैं जो विवाहित होकर परिवार की सेवा करती है जैसे संतो और अनिता भाभी है और तीसरे प्रकार की स्त्रियाँ वे हैं समाज सेवा करती है। वे नारी के उत्थान के लिए प्रयत्नशील है। सावित्री मल्होत्रा इसी प्रकार की स्त्रियाँ है। वैसे सावित्री जैसी स्त्रियाँ समाजसेवा करते हुए भी रोमँटिक मूड की है। रुक्मिणी को सावित्री जनजाति महिला उद्धार की स्थापना कर उँचा उठाती है।

उपन्यास में रुक्मिणी के माध्यम से नारी अस्तित्व और उसकी अस्मिता को व्यक्त किया है। रुक्मिणी स्वयं वैद्यजी से यही कहती है कि मर्द तो क्या जानवर भी बिना मर्जी से उसकी और आँख उठाकर नहीं देख सकता। यदि वह ऐसा करता है तो खंजर से आँख निकालकर वह हाथ पर रख देगी। आखिर कंजर की भी कोई आबरू है। उपन्यास का अंत बड़ा नाटकीय और रंजक है। रुक्मिणी विधानसभा चुनाव में विजयी होती है और राजमंत्री बनती हैं। यह एक आदिवासी महिला के अदम्य साहस का प्रतिक है। वह आदिवासी स्त्रियों के लिए एक उर्जा है। नारी सक्षमीकरण का एक सशक्त प्रमाण है। डॉ. किरण सक्सेना के शब्दों में—‘रेत उपन्यास में अभावग्रस्त पिछड़े, असहाय, अशिक्षित कही जाने वाली ये जनजातियाँ जयराम पेशा जिन्दगी से हटकर जाग्रत और संगठित होने के लिए छटपटा रही हैं। इनके आन्दोलन नक्सलवाद की हिंसा की तरफ न बढ़े इसलिए इन्हें सभ्य समाज, सरकार, प्रशासक, समाजसेवी सभी के सामूहिक प्रयास से मुख्यधारा में लाना होगा। यही आज की माँग है।’<sup>16</sup>

### **ग्लोबल गाँव के देवता – रणेन्द्र (2009)**

‘ग्लोबल गाँव के देवता’ रणेन्द्र द्वारा लिखित आदिवासी केन्द्रित उपन्यास है। इसमें असुर नामक आदिवासियों का वर्णन किया गया है। असुर शब्द से यही ज्ञात होता है कि एक ऐसा मानव समुदाय जो भयानक मायावी, नरभक्षी, असभ्य हो क्योंकि भारत के प्राचीन साहित्य में इसी प्रकार की धारणा प्रस्तुत हुई है। रणेन्द्र के उपन्यास ‘ग्लोबल गाँव के देवता’ में असुरों के संबंध में यह धारणा व्यर्थ साबित हुई है। जब लेखक की भेट असुर लालचन से हुई तब उन्हें आश्चर्य हुआ क्योंकि उन्होंने तो यह सुना था कि यह क्षेत्र असुरों का है। असुरों के बारे में उनकी राय यह थी कि वे खूब लंबे—चौड़े, काले—कलूटे, भयानक दाँत—वात निकले हुए, माथे पर

सिंग-बिंग लगे लोग होंगे। लेकिन लालचन को देखकर सबकुछ उलट-पुलट हो गया। असुरों के संदर्भ में रुमझुम यह बात कहता है कि—“हम वैदिक काल के सप्तसिन्धु के इलाके से लगातार पीछे हटते हुए आजमगढ़, शहाबाद, आरा, गया, राजगीर से होते हुए इस वन-प्रान्तर, कीकट, पौड्रिक, कोकराह चुटियानागपुर पहुँचे। हजार सालों में कितने इन्द्रों, कितने पांडवों, कितने सिंगबोंगा ने कितनी बार हमारा विनाश किया। कितने गढ़ ध्वस्त किये, उसकी कोई गणना किसी इतिहास में दर्ज नहीं है। केवल लोककथाओं और मिथकों में हम जिंदा है।”<sup>17</sup>

इस उपन्यास में ग्लोबल गाँव की दो देवताओं का उल्लेख हुआ है। पहला है—विदेशी वेदांग ग्लोबल गाँव का बड़ा देवता। यद्यपि कंपनी विदेशी है परंतु नाम देशी है। दूसरा देवता है टाटा। जिसने असुरों से लोहा बनाने और उससे चीजे बनाने का अंत कर दिया हैं इसलिए असुर आदिवासी मानते है कि टाटा कंपनी ने उनका विनाश कर दिया है।

उपन्यास के प्रारंभ में विज्ञान शिक्षक का परिचय लालचन नामक असुर से हो जाता है। उस शिक्षक के मन में असुरों के प्रति संवेदना जाग्रत होती है। उपन्यास की विशेषता यह है कि इस उपन्यास के माध्यम से असुर आदिवासियों का इतिहास ज्ञात होता है। ये आदिवासी अपनी जंगल, जमीन और जीवन पर आक्रमणकारियों द्वारा हो रहे आक्रमण से अपने को बचाने के लिए संघर्ष करते है। इतिहास के अनुसार ये आदिवासी आग की खोज करनेवाले है। धरती से कच्चा लोहा निकालनेवाले है। और इस लोहे को पिघलाकर विभिन्न प्रकार के हथियार और औजार बनाने वाले है। उनकी इस कारीगरी को देखकर उन्हें मायावी समझा गया और राक्षस कहा गया।

ये आदिवासी जिस क्षेत्र में रहते हैं उस क्षेत्र की उनकी जमीन हथियाकर उसमें अवैध खनन किया गया। ये आदिवासी शोषण के शिकार होते आ रहे हैं। गरीबी और भूख के कारण इन आदिवासियों की कन्याओं को सरकारी अफसर, सेठ और मुंशी वगैरे पर दिन-रात खपना पड़ता है। कभी पाट के संपन्न लोग, तो कभी खदान कंपनी के लोग इनका शोषण करते हैं। ग्लोबल विदेश के गाँव में यह शोषण और भी अधिक बढ़ता जा रहा है। इस शोषण के विरुद्ध रुमझुम, लालचन, कनाड़ी नवयुवक संघ, डॉ. रामकुमार, वहाँ का विज्ञान शिक्षक आंदोलन करते हैं। परंतु असुरों को गिरफ्तार कर लिया जाता है। उपन्यास में यह भी दर्शाया गया है कि शिवदास बाबा जैसे ढोंगी साधु हैं जो लड़कियों के लिए आदिवासी आश्रम प्रारंभ करते हैं और उन बालिकाओं का देहिक शोषण करते हैं।

उपन्यास के प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा है कि—“ग्लोबल गाँव के देवता’ असुर समुदाय के अनवरत जीवन संघर्ष का दस्तावेज है। देवराज इन्द्र से लेकर ग्लोबल गाँव के व्यापारियों तक फैली यह शोषण की प्रक्रिया को रणेन्द्र उजागर कर सके हैं। हाशिये के मनुष्यों का सुख-दुःख व्यक्त करता हुआ यह उपन्यास झारखंड से उपजी महत्वपूर्ण रचना है। असुरों की अपराजेय, जिजीविषा और लोलुप-लुटेरी टोली की दुराभिसन्धियों का हृदयग्राही चित्रण है।”<sup>18</sup>

### **अरण्य में सूरज – श्रीमती अजित गुप्ता (2009)**

श्रीमती अजित गुप्ता ने राजस्थान प्रदेश के मेवाड़ में स्थित भील आदिवासियों को दृष्टिकेन्द्र में रखकर ‘अरण्य में सूरज’ का सृजन किया है। ‘भीलवास’ में स्थित भील समाज का

आर्थिक, सामाजिक, एवं धार्मिक चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है। इसमें भील समाज में व्याप्त बाल मजदूरों, बालविवाहों जैसी कुप्रथाओं का विवेचन किया गया है। भीलवास की सबसे बड़ी समस्या यह है कि यहाँ काम न होने के कारण पुरुष वर्ग शहर में जाता है और गरीब परिवार को संभालता है। परंतु शहर में परिवार से अलग रहने के कारण ऐसी-वैसी बीमारियों का शिकार हो जाता है। इस उपन्यास में समाजसुधारक स्वामी परमानंद द्वारा आदिवासियों के लिए किये जा रहे प्रयत्नों का उल्लेख हुआ है।

स्पष्ट है कि आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में उपन्यासकारों की व्यथा यही है कि आदिवासी आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। सामाजिक दृष्टि से उनका शोषण समाज का उच्चवर्ग अर्थात् पूँजीपति, साहुकार, जमींदारों के द्वारा होता है। इसी के साथ वन विभाग के द्वारा इन्हें बार-बार अपनी जमीन से बेदखल किया जाता है। आदिवासी समाज में आर्थिक अभाव कारण अपराधी प्रवृत्ति व्याप्त हैं। स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा अत्यंत चिंतनीय है। वे देह व्यापार करने के लिए विवश हैं। धार्मिक दृष्टि से इनकी अपनी देवी देवता है। धार्मिक अंधविश्वास बुरी तरह व्याप्त है। इसलिए ये आदिवासी बीमारी की अवस्था में ओझा के पास जाते हैं। जहाँ तक संस्कृति का प्रश्न है सभी आदिवासी अपनी लोकसंस्कृति को सुरक्षित बनाए हुए हैं। आर्थिक अभाव में नृत्य, गीत के माध्यम से वे अपनी परेशानी को भूलाना चाहते हैं। आदिवासी दरिद्रता में भी हँसता-मुस्कराता है यही उसकी जीवन जीने की अपनी विशेषता है।

.....

—संदर्भ ग्रंथ—

- 1) पॉव तले की दूब— संजीव, पृ. 14
- 2) काला पहाड़— भगवानदास मोरवाल, पृ. 139
- 3) हिन्दी में आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यास का समीक्षात्मक  
अध्ययन— प्रो. बी. के. कलासवा पृ. 255
- 4) हिन्दी में आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक  
अध्ययन— प्रो. बी. के. कलासवा पृ. 134
- 5) जहाँ बाँस फूलते हैं— श्रीप्रकाश मिश्र, पृ. 69
- 6) हिन्दी में आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यास का समीक्षात्मक  
अध्ययन— प्रो. बी. के. कलासवा पृ. 84
- 7) जहाँ बाँस फूलते हैं— श्रीप्रकाश मिश्र, पृ. 130
- 8) जहाँ बाँस फूलते हैं— श्रीप्रकाश मिश्र, पृ. 130
- 9) अल्मा कबूतरी—मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 347
- 10) भारतवाणी (जून2011)— लेखक— प्रो. यशवंतकर संतोशकुमार लक्ष्मण, पृ. 30



11) आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य – संपादक डॉ. उषा कीर्ति राणावत,

डॉ. सतीश पाण्डेय, डॉ. शीतला प्रसाद दुबे, पृ. 134

12) काला पादरी-तेजिन्दर, पृ. 45

13) समीक्षा-जुलाई-सितंबर 2004, पृ. 39.40

14) आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य- सं. डॉ. उषा कीर्ति राणावत, डॉ. सतीश

पाण्डेय, डॉ. शीतला प्रसाद दुबे पृ. 247

15) रेत -भगवानदास मोरवाल, पृ. 111

16) समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श-

डॉ. शिवाजी देवरे, डॉ. मधु खराटे, पृ. 100

17) वर्तमान समय में आदिवासी समाज-सं. डॉ. गीता वर्मा,

रवि कुमार गोंड, पृ. 151

18) ग्लोबल गाँव के देवता- आमुख से

## तृतीय अध्याय

'आदिवासी केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में  
आर्थिक विमर्श'

## तृतीय अध्याय

### आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में चित्रित आर्थिक आयाम

प्राचीन काल में मनुष्य की आवश्यकताएँ अत्यंत सीमित थी, अतएवं उसके लिए अर्थ की महत्ता विशेष महत्व नहीं रखती थी। परंतु आधुनिक युग में मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित होती जा रही है। ऐसी स्थिति में आज अर्थ की अर्थवत्ता अत्यंत महत्वपूर्ण बन गई है। आर्थिक आधार पर समाज को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है—उच्चवर्ग, मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग। निम्नवर्ग अपने जीवन को जीने के लिए संघर्षरत रहता है। इस वर्ग के अंतर्गत आदिवासी समाज आता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों के बाद भी आदिवासी समाज आर्थिक अभाव में जी रहा है। उसे अन्न, वस्त्र और निवास इन मुलभूत आवश्यकताओं में से एक भी आवश्यकता पूर्ण नहीं हो पाती है।

आदिवासी समाज की सबसे बड़ी समस्या है—रोटी। भूख से बिलबिलाने वालों की संख्या चौकानेवाली है। विशेष रूप से झारखंड के पलामू क्षेत्र, बिहार के तैमूर, उड़ीसा के सुंदरगढ़ के आदिवासी भूखमरी के शिकार है। अमरेंद्र किशोर ने 'जंगल जंगल लूट मची है' में लिखा है कि—“बही—खतियान और कागजातों ने आदिवासियों का बहुत बुरा किया है। सीधे—सादे—सच्चे वनवासी बेचारे अक्षर ज्ञान की शक्ति से आज भी जुदा हैं। उस समाज में शिक्षा की पहुँच सीधे और साधे ढंग से नहीं हुई है। और, कोर्ट—कचहरी की भाषा से वे सर्वथा अनभिज्ञ होते हैं। तो अँगूठे के टप्पे लगवाकर उनकी जमीन से लेकर जोरु तक ठेकेदारों ने

अपने कब्जे में ले लिया। इतना ही नहीं, दुर्गम इलाके के नक्शे पर जरूर उभर आए मगर भूख—गरीबी—अकाल—मौत ने उन इलाकों का साथ नहीं छोड़ा।”<sup>1</sup>

आदिवासियों की आर्थिक स्थिति के कारणों की मीमांसा करते हुए डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा ने लिखा है—‘सबसे पहले इन परिवारों को गरीबी के कारण खाने—पीने, विवाह—शादी इत्यादि के अवसर पर ऋण लेना पड़ता है। एक बार ऋण लेने पर उनकी जीविका के परम्परागत साधन छीन जाते हैं, जमीन गिरवी रखनी पड़ती है अथवा उच्च समाज के किसी सदस्य के यहाँ बंधक मजदूरी स्वीकार करनी पड़ती है। दूसरे शब्दों में वह अपने श्रम का मालिक नहीं रह जाता।’

मनमोहन पाठक का ‘गगन घटा घहरानी’ उराव आदिवासियों पर केन्द्रित है। इसमें बंधुआ मजदूरों की समस्या, सूखा, अकाल के कारण आदिवासियों के आर्थिक संकट का चित्रण किया गया है। इस पर जमींदार उनका आर्थिक शोषण करता है। जब अकाल पड़ता है। तब खेत सूख जाते हैं। ऐसी स्थिति में चेतू और दगडू अपना खेत जमींदार के पास ‘रेहन’ रखते हैं। परंतु एक बार रायसाहब के पास गिरवी रखा हुआ खेत फिर नहीं मिलता।

वीरेंद्र जैन के ‘पार’ उपन्यास में आर्थिक अभाव को दूर करने के लिए आदिवासी स्त्रियाँ छोटे—छोटे काम करती हैं। जैसे वे बीजना बनाती हैं, गाँजिया बनाती हैं, पिरिया बनाती हैं, टुकनियाँ बनाती हैं, सूप बनाती हैं, पंखे बनाती हैं, कभी तेंदू बीनती हैं। जीरोन खेरा की औरतों को वस्तु बेचने के लिए दूसरे गाँव जाना पड़ता है। तब शरीर को ढाँपना आवश्यक हो जाता है। कोई निपूती सिध्द बाबा के स्थान पर जोड़ा चढ़ा गई थी। उसीको लाकर उसके तीन टुकड़े किए और तीन स्त्रियों ने उन्हें पहनकर गाँव जाना योग्य समझा। आदिवासी राउतों का

आर्थिक शोषण निर्मल साव करता है। लेखक के शब्दों में—‘घूरे साव ने राउतों से खूब बटोरा, भर—भर झोली बटोरा।

‘अल्मा कबूतरी’ में कबूतरा आदिवासियों का चित्रण है। कबूतरा आर्थिक दृष्टि से अत्यंत दयनीय है। होली आदि त्योहारों पर कुछ खाने को मिल जाता है। खेतों में फसल गमक रही थी, जंगल तक महक गया था। तब वह आदिवासी रोटी का सपना देखते हैं। भूख का त्योहार मनाते हैं। बहुत दिन हुए उन्होंने कोदों तक नहीं खई। बीड़ियों के बेरों पर दिन गुजारे हैं। इस आदिवासी समाज की विशेषता यह है कि इनका व्यवसाय शराब बनाना और चोरी करना है। समाज में विवाह योग्य लड़के के लिए चोरी करना, भैंसे आदि खोलकर ले जाना आदि कला अवगत होनी चाहिए। सगाई संबंध वाले भी ऐसी कलाकारी सुनकर रूपये देते हैं। इसके अतिरिक्त औरतें छोटे-छोटे काम भी करती हैं। राणा की माँ कदमबाई गाय-भैसों का गोबर चोरी-चोरी बटोरकर सुखा देती है क्योंकि कंडो का मोल बस्ती में हर इंधन के मुकाबले महंगा था। वह चतुराई से जिंदगी की गाड़ी चलाना सीख गई है। कदमबाई के शब्दों में—“क्या समझूँ? हमें तो बचपन से एक सच्चाई समझाई गई है कि कबूतरी के मर्द की कोई खेती-धरती नहीं होती। कुआँ-तालाब पर उसका हक नहीं होता। फिर भी जिंदा रहना होता है। अन्न-पानी चुराओ और जुटाओं। बिना छत के सोने की आदत डालो। मौसमों को फतह करो।”<sup>2</sup>

यह आदिवासी कबूतरा समाज अवैध धंदे करने के कारण पुलिसवाले भी इनसे हफ्ते वसूल करते हैं। केहरसिंह शराब बनाता है। इसलिए दरोगाजी को हफ्ते की रकम में 500 रुपये ज्यादा मिलाकर देता है ताकि वे खुश रहे। आर्थिक स्थिति संतोषजनक न होने के कारण बच्चे

भी चोरी करना सीख जाते हैं। मंसाराम जब नौ वर्ष का था, तभी उसने एक साइकिल सवार की साइकिल के पहिए में डंडा डालकर और उसे कुल्हाड़ी दिखाकर सोने की अँगूठी उतरवाली थी।

जब राणा को अल्मा ने खाना परोसा तो वह खुश हो गया क्योंकि अभी तक वह दाल-रोटी खाने को तरसता था। यहाँ दाल के संग सब्जी, चावल, दही भी है। उसे याद आया कि माँ कहा करती थी अतिथि की भूख बावरी होती है। यहाँ वह अच्छा भोजन पाकर बावरा हो रहा है। वहाँ कबूतरों के डेरों पर भूख हत्यारी होती थी। पीपल के फल और मकोईयों के लिए लोग एक-दूसरे को लहू-लुहान कर देते थे।

‘काला पहाड़’ उपन्यास में आदिवासी मेवातों की आर्थिक पिछड़ेपन का विवेचन किया गया है। जब प्रधानमंत्री महुँ नामक गाँव में आते हैं तब अपनी आर्थिक स्थिति को व्यक्त करते हुए सरपंच उनसे निवेदन करते हैं कि—“माननीय प्रधानमंत्री जी जैसाकि आप जानते हैं हमारा यह इलाका बेहद गरीब और पिछड़ा हुआ है। यहाँ पिछले कई सालों से न के बराबर बारिश हो रही है। जिसके कारण सारे जोहड़ और तालाब सूख चुके हैं। मटर, जौ, चना जैसी फसलें पैदा होनी बंद हो गई हैं। इसलिए इलाके की ओर से चौबीसी की पहली माँग यह है कि मेवात में सिंचाई की पर्याप्त सुविधाएँ मुहैया कराई जाएँ और बरसों से मंजूर ‘मेवात नहर’ का निर्माण जल्दी शुरू कराया जाएँ...।”<sup>3</sup> विडंबना यह है कि मेवात में कारखाने लगाये जायेंगे, रेल की पटरी बिछाई जायेगी, बेरोजगारों को रोजगार दिया जायेगा। यह आश्वासन कई वर्षों से आदिवासी सुन रहे हैं।

‘जहाँ बाँस फूलते हैं’ में जोवा की आर्थिक स्थिति को रेखांकित किया गया है। जोवा की माँ जोवा को अकेले लकड़ियों के ढेले को ढकेलते हुए देखती है तो उसकी बेटे पर ममता बढ़ जाती है और साथ ही उसे गरीबी का एहसास भी होता है। वह जोवा को भरपेट चावल तो नहीं दे पाती और तो और बाँस का मुर्का, जंगली अंटम, करमोया का सार या जंगली फल-मूल तक दे नहीं पाती है। एक आदिवासी वृद्धा ने झा को उबले मछलियाँ और बाँस का कोपड़, नमक मिर्च के साथ परोसा और कहा कि वह इसे खा ले। उपन्यासकार के शब्दों में –“हाँ! क्या करता? लगा आप लोगों को नींद नहीं आ रही है। मैं भूख जानता हूँ। खुद भी तो तीन दिन से भूखा हूँ। मैं जानता हूँ—”वह बात कहते-कहते रुक गया और झा खाते-खाते। बूढ़े की आँखों की चमक गायब हो गई थी। उसने फिर वही बात दुहराई, “चार छँटी चावल है। सिर्फ चार। इसी के सहारे अपने तीन शिशुओं को जाने कब तक पालन होगा।”<sup>4</sup>

मिजोराम में आर्थिक विषमता दृष्टिगत होती है। एक और धनसंपन्न वर्ग हैं तो दूसरी और आर्थिक अभाव में जी रहा आदिवासी वर्ग है। लालडे.डा आदिवासियों को सचेत करता हुआ समझाता है कि—“मिजो बंधुओं! बहुत दिनों से ये धनी लोग, ये वाई लोग लोगों का सुख अपनी तिजोरियों में कैद रख चुके हैं। गरीबों का आहार इनके गोदामों में मूल्यवृद्धि की प्रतीक्षा करते-करते सड़ रहा है। समय आ गया है कि वे अब अपनी तिजोरियों और गोदामों में महरुम हों। उनकी अट्टालिकाओं को गिरा दिया जाए और सारे वित्त को इन धरती के बेटों-इन झुके लोगों में बाँट दिया जाए। समय आ गया है कि लुशाई हिल्स के सपूत उठें और इस निहंग धरती का भाग्य बदल दें...।”<sup>5</sup>

‘जहाँ जंगल शुरु होता है’ उपन्यास में बिसराम की तीन साल की बेटी को सॉप ने डसा और उसकी मृत्यु हो गयी। परंतु समस्या यह थी कि शुद्धि की रस्में पूरी कैसे की जाय। तीसरा दिन था और घर में एक दाना भी नहीं था। खेत भी साहुकार के यहाँ बंधक पड़े है। फिर सोचा कि गाय बेच देंगे और इधर-उधर से कुछ रुपये उधार ले लेंगे। इस प्रकार थारु जनजाति इतनी आर्थिक अभाव में होती है कि शुद्धि की रस्म के लिए भी पैसा नहीं होता। थारु आदिवासी जंगल में अर्थार्जन के लिए कुछ करना चाहते है। लेकिन वहाँ भी परिस्थिति के कारण कुछ कर नहीं पाते। जैसा कि उपन्यासकार ने लिखा है—“जंगलों में बेंत हैं, हाथ में हुनर है, झूँड़ी, खॉची तो बना ही सकता है वह। लेकिन उसे लाने कौन देगा? बेंत का एक ठेकेदार एक जल्लाद, दूसरे जल्लाद वन-विभागवाले। कहाँ से ले आये रकम, घूस-पाति के लिए।”<sup>6</sup> इस कथन से ज्ञात होता है कि थारु आदिवासियों को अपने आर्थिक अभाव को दूर करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

राकेश कुमार सिंह का ‘पठार पर कोहरा’ में आदिवासियों की आर्थिक स्थिति का यथार्थ चित्रण है। स्वयं राकेश कुमार सिंह ने लिखा है—“आर्थिक तानाशाही ने झारखंड के आदि निवासियों के रहन-सहन, संस्कार, सोच और परम्पराओं को ही विरूपित नहीं किया वरन् पूरे जनजातीय समाज के स्नायुतन्त्र को ही तोड़-मरोड़ डाला है।”<sup>7</sup> आदिवासी क्षेत्र में आर्थिक लूट मची हुई है। तूपकाड़ीह रेल्वे स्टेशन के पास हाट लगता है। इन दो दिनों के अलावा यदि खरीदारी करनी हो तो बनिये की दो दुकानें है परंतु वे भोथरी छुरी से गला काटते है। हर चीज 10-20 पैसे महंगी। वैसे आदिवासियों की आर्थिक आवश्यकताओं को रेखांकित करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है—“वैसे वनवासियों की जरूरतें हैं भी कितनी? अनाज, किरासन तेल,



नमक, सस्ते कपड़े, लोहे-लकड़ी के सामान, घी-गुड़-शक्कर...आदिवासियों द्वारा जंगल से इकट्ठी की गयी चीजें-मसलन शहद, पत्तल-दोने, लकड़ी के लट्टे गट्टर, चींटे, भोज्य पक्षी, मछलियाँ और...हँड़िया (चावल की मदिरा) शुक्रवारी या मंगरवारी हाट में ही सबकुछ मिल जाता है।<sup>18</sup>

भारत के अनेक वनवासी क्षेत्रों में आज भी क्रय शक्ति के अभाव में विनिमय प्रणाली चलती है। यहाँ के लोग 10-5 रुपये तक का सौदा नगद खरीदने की क्षमता रखते हैं। परंतु उसके उपर कीमत बढ़ जाती है तो उनकी नगदी क्रय शक्ति क्षीण होने लगती है। तब ये वस्तु विनिमय की आदिम बाजार व्यवस्था का व्यवहार करते हैं विनिमय की शक्ति मुद्रा से वस्तु में स्थानांतरित हो जाती हैं एक गज कपड़े के बदले एक मुर्गी, छोटे कठोते पर अनाज के लिए एक बीसी याने बीस अंडे। आदिवासी जंगलों से शहर आया करते हैं। अतः गुड़-चीनी लेना हो तो बराबर माप में शहद चुकाना होता है। आदिवासी भोले-भाले, निरक्षर होने के कारण उनका शोषण होता है। जैसा कि उपन्यासकार ने लिखा है-“शहर-बाजार की समझ न होने के कारण आदिवासी शहरों में प्रायः ठगे भी जाते हैं। कभी निमोँछिए शहराती लौंडे भी धौंस-रोब दिखाकर सोने जैसी चीजें कौड़ियों के मोल उठा लेते हैं।”<sup>19</sup>

आदिवासी क्षेत्रों में कतिपय ऐसे शक्तिशाली व्यापारी होते हैं जो अर्थ और शक्तिबल पर आदिवासी क्षेत्रों में शोषण किया करते हैं। आज भी भारत में ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जहाँ जंगल से संबंधित ठेका किसी आदिवासी के नाम पर लिया जाता है। वे ऐसे किसी आदिवासी को चुनते हैं जो बेचू तिवारी का नमक खाता है और जंगल के नाते भयभीत हो। वैसे तो इस क्षेत्र के

वनविभाग के सारे कर्मचारी, अफसर, थाना पुलिस जानती है कि ये ठेका बेचू तिवारी ने ही लिया है।

भारत जो कि विकसनशील राष्ट्र है एवं सुनहरे भविष्य की ओर देख रहा है। ऐसे राष्ट्र में आर्थिक रूप से भ्रष्टाचार व्याप्त है। आश्चर्य तो यह है कि शिक्षा जैसे पवित्र क्षेत्र में यह भ्रष्टाचार अधिक मात्रा में व्याप्त है। आदिवासी एवं दूर-दराज के क्षेत्रों में शिक्षक अनुपस्थित रहते हैं और स्कूल में पढ़ाने से अफसर, अधिकारियों को वे खुश रखते हैं—“प्रायः अनुपस्थित रहनेवाले शिक्षकों की पहुँच जिला अधीक्षक के कार्यालय तक थी। जिस दिन वे शिक्षक विद्यालय नहीं आते थे, उस शाम वे जिला शिक्षा अधीक्षक या किसी अन्य पदाधिकारी के आवास पर देखे जा सकते थे। विद्यालयों में कई प्रकार के खर्च और खरीदारियाँ होती हैं। प्रधानाध्यापकों को खरीदों पर अच्छी कमीशन मिलती है, यह तो एक नंगा सच है, मगर घर-बैठे वेतन उठानेवाले शिक्षक अपनी अनुपस्थिति-सुविधा हेतु कुछ सुविधा-शुल्क जिला शिक्षा अधीक्षक को अदा करते हैं, यह जानकर हतप्रभ रह गये थे संजीव...।”<sup>10</sup>

लेखक की व्यथा यह है कि सरकारी कर्मचारी सरकारी खजाने का ही अंधाधुंध दोहन कर रहे हैं। सरकारी खरीद के आदेश ऐसे ठेकेदारों को दिए जाते हैं जो सत्ता पर बैठे लोगों को कमीशन दे। संजीव अनुभव करता है कि शिक्षा विभाग में कुप्रबंधन, घोटाले, गबन और गलत तथ्यों की दलदल व्याप्त है। तल से चोटी तक हरी-भरी भ्रष्टाचार की बेल फैली हुई है और आश्चर्य की बात यह है कि कुछ वर्षों पूर्व तक भ्रष्टाचारी व्यक्ति अपने आपको अपराधी मानता था। परंतु अब वह किसी प्रकार का संकोच अनुभव नहीं करता है। उपन्यासकार के शब्दों में—“अभी दस-पंद्रह वर्ष पूर्व तक भ्रष्टाचार में संलिप्त किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी पर उसकी

भद्द पिट जाती थी। वह समाज में मुँह दिखाने योग्य नहीं रह जाता था। लोग उसे अपराधी मान लेते थे और छुतहे रोग की भाँति उससे कतराते थे। भ्रष्टाचार के मुद्दे पर जो जनशक्ति एक सत्ताधारी सरकार का तख्ता पलट सकती थी, उसी जनता की मानसिकता और सोच में कैसी गिरावट आ चुकी है, यह देख मर्माहत थे संजीव।<sup>11</sup>

भारत में स्पीड अर्थात 'स्टेट प्रोग्राम फार ऐलेमेन्ट्री एज्युकेशन' के अंतर्गत जापान, स्वीडन, आस्ट्रेलिया से करोड़ों रुपये प्राप्त होते हैं जो बिहार और झारखंड के लोगों को शिक्षित बनाने के लिए दिये जाते हैं। परंतु यह धन बिचौलिए ही हड़प कर लेते हैं। शिक्षा क्षेत्र में आर्थिक भ्रष्टाचार भयंकर रूप से व्याप्त है। संजीव जानता है कि अधिकांश संस्था इसी प्रकार किसी माफिया या किसी जीवित या दिवंगत छोटे-बड़े राजनेता की छत्रछाया में अटके हैं। ऐसे महाविद्यालयों में छात्रों और शिक्षकों से धन इकट्ठा किया जाता है। संजीव जब द्वितीय सत्र की फाईल देख रहे थे तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि फाईल में न किसी खरीद का बिल है न भुगतान की पक्की रसीद विद्यालय की मरम्मत के लिए 5000 रुपये की रकम निकाली गई। जिसके भुगतान का प्रपत्र भी हड़बड़ी में तैयार किया हुआ था। वह भी कच्चा प्रपत्र था। कारीगर-मजदूरों में से किसी के हस्ताक्षर भुगतान पत्र पर नहीं थे और अँगूठे के निशान थे। इस प्रकार स्कूल में आर्थिक भ्रष्टाचार चल रहा था।

आदिवासियों का आर्थिक शोषण बेचू तिवारी और गगन बिहारी साहू करते हैं क्योंकि अधिकतर खेत उन्हीं के हैं। आदिवासी तो उनके खेतों में रोपने-काटने का काम करते हैं। ऐसे आदमखोरों का एकमात्र धर्म होता है गरीबों का रक्त पीना। वे श्रमिकों के श्रम को अपने पैरो तले दबाएँ रखते हैं। वनोपज की कमाई से शहरों में बड़े-बड़े मकान खड़े करते हैं।

सामान्य रूप से आदिवासियों का एक व्यवसाय होता है बीड़ी के पत्तों को एकत्रित करना। जिन्हें तेंदु के पत्ते भी कहते हैं। परंतु इसका लाभ मुनाफाखोर उठाते हैं—“खूब मेहनत से लू-घाम में सहेजा जायेगा एक-एक पत्ता। सौ-पचास की गड्डी बनाएँगे। फिर इन गड्डियों को औने-पौने भाव में ख्रीद लेंगे बीड़ी के ठेकेदार और भर-भर बोरे पत्ते खूब मुनाफेवाले भाव पर बेचेंगे।”<sup>12</sup>

सम्प्रति, आदिवासी समाज कुछ अंशों में जाग्रत हो रहा है। आदिवासी क्षेत्रों में स्थापित हो रही ‘कोआप्रेटिव सोसायटियाँ’ आदिवासियों के आर्थिक कल्याण के लिए प्रयास कर रही हैं। यह एक शुभ और आशादायक स्थिति है। आदिवासी हरमू को कोआप्रेटिव्ह सोसायटी से 1000 रुपये का कर्ज मिला है। जिससे संजीव ने उसके लिए गाँव में किराने की दुकान खुलवायी है।

लेखिका शरद सिंह ने ‘पिछले पन्ने की औरतें’ उपन्यास में आदिवासी समाज की आर्थिक स्थिति को अभिव्यक्त किया है। लेखिका ने जब श्यामा को यह प्रश्न किया कि अगर वह जो वेश्यावृत्ति का धंदा करती है उसे छोड़ क्यों नहीं देती? तब उसका उत्तर विचारणीय बन जाता है—‘छोड़ दूँगी? तो खाऊँगी कहाँ से? अपना, अपने बच्चों का अपने परिवार का पेट पालने के लिए कुछ तो करना ही होगा और जिस धंदे में पैसा मिलेगा वहीं तो करना होगा। ये स्त्रियाँ चोरी करती हैं, चोरी करना इनका पेशा है। इसलिए बिलौटी ने चोरी धन के रूप में लायी हुई सोने की मुंदड़ी अपने माँ के हाथ में रखी तो माँ ने उसकी लाख-लाख बलाईयाँ ली थी। जब माँ भीड़ से घिरी हुई टुमके लेकर नाच रही थी उसी समय बिलौटी ने भीड़ में घुसकर किसी आदमी की उंगली से मुंदड़ी सरका ली थी।

19 वीं सदी के अंतिम वर्षों रसूबाई के मर्द को पुलिस का प्रकोप का सामना करना पड़ा। इसका कारण यह था कि उसके जाति के स्त्री पुरुष, गिरह कट के रूप में बदनाम हो चुके थे। उन्हें चोरी, ठगी और हाथसफाई द्वारा पेट भरना आसान लगता था। बेड़िया समाज में परिवार की कम से कम एक लड़की को बेड़नी अर्थात् नाचनेवाली बनना ही पड़ता है क्योंकि यह परिवार की आजीविका चलाने के लिए आवश्यक होता है। बेड़िया पुरुष किसी स्थायी रोजगार से जुड़े नहीं रहते।

तेजिन्दर के 'काला पादरी' उपन्यास में आदिवासियों का चित्रण हुआ है। जिसमें उनकी घोर दरिद्रता को व्यक्त किया गया है। अकाल पड़ने के कारण इन आदिवासियों की स्थिति और भी बदतर हो गई। थाने में रिपोर्ट दर्ज थी कि बिजापुरा गाँव में एक आदिवासी स्त्री तथा उसके दो बच्चों जिनमें एक चार वर्ष का था और दूसरा अभी माँ की छाती में दूध तलाश रहा था उसकी मृत्यु हो गई। इसी प्रकार अंबिकापुर के अस्पताल में भर्ती एक बूढ़े व्यक्ति ने बताया कि उसकी बहु की मृत्यु भूख से हुई है और उसके बेटे की मृत्यु भी कुछ दिन पहले भूख से ही हुई थी। रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि—“इस क्षेत्र के आदिवासी पिछले कई दिनों से जहरीली जंगली बूटियाँ खा रहे हैं और जिले के भीतरी इलाकों में तो कुछ लोग अपनी भूख मिटाने के लिए बिल्लियों और बंदरों का शिकार कर, उनका मांस तक खा रहे हैं।”<sup>13</sup>

उपन्यास के नायक आदित्य पाल को जब यह ज्ञात हुआ कि यहाँ के आदिवासी ईश्वर से यह प्रार्थना करते हैं इस वर्ष उनके गाँव में हाथी भेज दे ताकि वे उनके झोपड़े तहस-नहस कर दे। इस प्रार्थना को सुनकर नायक को हँसी आई। परंतु इस प्रार्थना के पीछे उद्देश्य यही था कि जिन लोगों के झोपड़े हाथी तोड़ देते हैं। उन्हें सरकार की ओर से मुआवजा

मिलता है और झोपड़ा दुबारा बनाने के लिए लकड़ियों की बल्लियां और खपरैल आदि भी मिलता है। कुछ पैसा भी मिलता है जिनसे कम से कम छह महीने का अनाज खरीद सकते हैं। वास्तव में यह एक भयानक सच है। 21 वीं शती के आरंभ का दिल दहलानेवाला सच है। जिसे आदित्य साक्षात् सामने देख रहा है। उपन्यासकार ने इस क्षेत्र की सबसे प्रमुख समस्या भूख के संबंध में लिखा है कि—“एक आदमी भूखा है और भूख की वजह से बीमार है। भूख एक, भूख दो, भूख तीन, भूख चार, भूख पांच और भूख छह। उसने भूख छह तक का एक रिकार्ड बनाया है। एक ऐसा रिकार्ड जिसे दस्तावेजों में दर्ज करने वाला कोई नहीं। कोई गिनीज़ बुक आफ़ वर्ल्ड रिकार्ड नहीं, कोई लिम्का नहीं, कोई थम्स अप नहीं। इस तरह जब वह भूख छह तक पहुँच जाता है तो उसे लगता है कि बस अब इसके बाद और कुछ नहीं। लेकिन वह अपने आसपास बहुत सारे लोगों से घिरा है। वे उसे गाँव की चौपाल पर लिटा देते हैं।”<sup>14</sup> वास्तव में उसे अन्न की आवश्यकता है परंतु आदिवासी अज्ञान के कारण यह मानते हैं कि उसकी बीमारी का कारण भूत-प्रेत है। इन आदिवासियों के भूख का एक ही विकल्प है कि उन्हें चावल मिले। परंतु ‘चावल न उनके पास है, न गाँव वालों के पास और जिनके पास है वे उन्हें देने के लिए तैयार नहीं है।’ एक व्यक्ति जिसका नाम बिरई लकड़ा था तथा जिसके भाग्य में राजयोग लिखा था या नहीं परंतु वह भूख से मर गया। उनके सींगी देवता भी उन्हें बचा नहीं पाये।

आदिवासी गाँव के पास लखमपुर गाँव में गोयल सेठ का गोदाम था। जो चावल के बोरो से भरा पड़ा था। उसका एक नौकर था कुजूर। जिसकी उम्र 34-35 वर्ष की थी। कुजूर जब 10 वर्ष का था तभी उसके बाप ने 2000 रुपये कर्ज के बदले में उसे गोयल सेठ के पास गिरवी रखा था। इसके बदले में उसे हर वर्ष दो बोरी चावल पहुँचा दिये जाते थे। जब कुजूर

अपने गांव आया तो उसने देखा कि उसके हमउम्र दोस्त भूख के कारण सूखकर तीली हो गये हैं। कुछ तो षहर की ओर भाग गये हैं। धान की सूखी बालियाँ तक कहीं दिखाई नहीं दे रही हैं। 7-8 साल तक उम्र के बच्चें चलते-फिरते भूत-प्रेत नजर आ रहे हैं। इस दृश्य को देखकर उसका मन बेचैन हुआ। उसने अपने गांव के मित्रों को सेठ गोयल के गोदाम के बारे में बताया और इस प्रकार कुजूर और उसके मित्रों ने एक रात गोदाम लूट लिया। परंतु वे पकड़े गये। कुजूर और उसके मित्रों ने न्यायालय में अपराध कबूल कर लिया। अंततः न्यायाधीश ने क्रांतिकारी फैसला सुनाया—“चूंकि कुजूर और उसके साथियों पर इससे पहले लूट और डकैती का कोई भी जुर्म दर्ज नहीं है और उन्होंने ईमानदारी से इस आरोप को स्वीकार भी किया है तथा इसके साथ ही हालात ऐसे हैं कि ज़िले के कई गांवों में लोग चावल के एक एक दाने को मोहताज हैं, ऐसे में किसी भी एक व्यक्ति को चाहे वह कितना ही ताकतवार क्यों न हो, यह हक नहीं बनता कि वह सैकड़ों बोरी चावल अपने गोदाम में भर कर रखे, इसलिए इन सब हालात को नज़र में रखते हुए यह अदालत अल कुजूर और उसके सभी साथियों को इस ताक़ीद के साथ सिर्फ एक दिन के सादे कारावास की सज़ा देती है कि इसके बाद वे कभी क़ानून के दायरे से बाहर जा कर कोई काम नहीं करेंगे। ज़िला प्रशासन को भी यह हिदायत दी जाती है कि गोयल सेठ ऐसे ही दूसरे अपराधियों की खोज की जाये और उन पर जमाखोरी के जुर्म में कानूनी कार्रवाई की जाये।”<sup>15</sup>

वास्तव में यह फैसला उपन्यासकार का मनगढ़ंत न होकर रायपुर के एक जिला एवं सत्र न्यायाधीष जस्टीस ए. ए. आबेदी के फैसले पर आधारित हैं जेम्स खाखा ने कहा कि यह

एक क्रांतिकारी किस्सा है। वास्तव में न्यायाधीश के फैसले में आर्थिक विषमता और जमाखोरी की ओर संकेत किया गया है।

इस आदिवासी क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों का प्रभाव है। जेम्स खाखा बिशप से पूछता है कि—‘भूख हमेशा गली की आदिवासियों की क्यों होती है।’ तब बिशप उत्तर देते हैं कि—‘भूख भूख है, इसके लिए रोटी बहुत जरूरी है और ईसाई धर्म पर विश्वास रखने वाले को रोटी मिलती रहे। इसके लिए प्रयास करना चाहिए।

‘रेत’ आदिवासी कंजर समाज पर केंद्रित उपन्यास है। इस समाज में लड़कीवालों को दहेज दिया जाता है। यह रकम भी कम नहीं होती। उपन्यास में अंगूरी रंभा के प्रेमी ड्रायवर को बुलाकर स्पष्ट शब्दों में कहती है कि अगर वह अपनी पोती को भाभी बनाता है तो उसे कम से कम दो लाख रुपये दहेज में मिल सकते हैं। इस समाज में जो वेश्या होती है उसे खिलावडी और जो विवाहित होकर घर संभालती है उसे भाभी कहते हैं। रंभा जब यह प्रश्न करती है कि उसके प्रेमी की आर्थिक स्थिति संतोषजनक नहीं है। अतः वह इतना धन कहाँ से ला सकता है और फिर मैंने अभी तक इतना कमाकर दिया है उसका क्या? तब अंगूरी यही कहती है कि रंभा अपना घर बसाकर उसका आर्थिक नुकसान ही कर रही है।

कंजर समाज में भी विवाह के अवसर पर आर्थिक समस्या बनी रहती है। वेश्याएँ पुलिसवालों के लिए आर्थिक कमाई का एक महत्वपूर्ण साधन होता है। वेश्याओं को पुलिस को रिश्वत देनी पड़ती है। रुक्मिणी वैद्यजी से यही कहती है कि इन पुलिसवालों को उनसे संबंध बनाकर रखना पड़ता है क्योंकि इनकी कमाई वेश्याओं से होती है। उसीके शब्दों में—“हमारा और



इस पुलिस का तो जूँ और घाघरी जैसा नाता है। न जूँ से घाघरी छोड़ते बनती है, न घाघरी से जूँ। वैसे भी हम पुलिस से बनाकर ना रखें, तो हमें कौन जीने दे। पता है धरमपुरा कोतवाली में आने के लिए पुलिस महकमें में मोटी रकम चढ़ाई जाती है।<sup>16</sup> पुलिस व्यवहार में सबसे अधिक भ्रष्टाचार है। जैसे धरमपुरा कोतवाली की असली कमाई है। गाजूकी, पठेपुर, कलगाँव, अल्लाहपुर आदि गाँवों के चढ़ावे से होती है और फिर पुलिसवाले आदिवासी कंजरों और इस समाज की वेश्याओं से धन वसूल करते हैं।

रणेन्द्र ने 'ग्लोबल गाँव के देवता' में असुर आदिवासियों के रहन-सहन की पध्दति को व्यक्त करते हुए उनकी आर्थिक स्थिति की और भी संकेत किया है। इन आदिवासियों के मिट्टी के बने घर होते हैं। सामने बड़ा-सा अहाता होता है। बरामदे में मुर्गियों के बाड़े होते हैं। ये गाय-गोरु, बकरी-छकरी, मुर्गी-सुअर केवल पशु-पक्षी ही नहीं थे। बल्कि आदिवासियों के पासबुक भी थे। हारी-बीमारी, शादी-ब्याह इन्हीं प्राणियों से हाट में बेच दिया जाता था। असुर गाँवों में अधिकांश परिवार के पास इतनी जमीन नहीं थी कि वे सालभर के लिए मक्का प्राप्त कर सकें। ऐसे परिवार का पेट तो जंगल ही पालता हैं। महुआ, कटहल कई तरह के कंद और साल सब पेट भरने के काम आते हैं।

आदिवासी निरक्षर और सरल स्वभाव के होने के कारण साहुकारों, जमींदारों, ठेकेदारों के द्वारा आर्थिक रूप से शोषित हैं आदिवासी स्त्रियाँ छोटी-छोटी वस्तुएँ तैयार करती हैं, जैसे-टोकरियाँ, सूप, पंखे बनाना। इससे उनका और उनके परिवार का पेट भरता नहीं है। इसी प्रकार कुछ आदिवासी समाज अपराधी वृत्ति से जुड़े हैं जैसे कबूतरा समाज चोरी, डकैती और शराब बनाना व्यवसाय अपनाये हुए हैं। 'काला पहाड़' उपन्यास में आदिवासी मेवात अपने आर्थिक

कष्ट को प्रधानमंत्री तक पहुँचाते हैं। 'जहाँ बाँस फूलते हैं' का जोवा को भरपेट चावल तो नहीं मिलता। इस उपन्यास का वृद्ध भूख को जानता है क्योंकि वह खुद तीन दिन से भूखा है। 'जंगल जहाँ शुरु होता है' में आदिवासी स्त्रियां जंगलों में होने वाले बेंत से वस्तुएँ बना सकती हैं, परंतु बेंत का ठेकेदार जल्लाद हैं। वह उन्हें बेंत लेने नहीं देता। राकेश कुमार सिंह का 'पठार पर कोहरा' में उपन्यासकार ने स्पष्ट लिखा है कि निमोछिए बाजार की समझ न होने के कारण आदिवासी प्रायः ठगे जाते हैं। कभी-कभी बिचौलिए अपना रोब दिखाकर सोने जैसी चीजें कौड़ियों के मोल खरीद लेते हैं।

आर्थिक स्थिति की भयावहता के कारण हैरान-परेशान आदिवासी स्त्रियाँ देह व्यापार करती हैं। 'रेत', 'पिछले पन्ने की औरतें' में यही सच्चाई बयान की गई है। वेश्या व्यवसाय के साथ कतिपय स्त्रियाँ दुकानों में जाकर छोटी-मोटी चीजें उठा लेती हैं। 'काला पादरी' उपन्यास में आदिवासियों की घोर दरिद्रता वर्णित है। जहाँ एक बच्चे की मौत भूख से हो जाती है। इसी उपन्यास में भूख की समस्या का निरूपण करते हुए लिखा है कि भूख से मरने वालों का कोई रेकार्ड नहीं है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' में असुर आदिवासियों का शोषण ग्लोबल गाँव के देवता अर्थात् वेदान्त जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ और टाटा कंपनी करती है। जो लोहे की वस्तुएँ असुर बनाते थे, उन्हें टाटा की फैक्ट्रियों में बनाने के कारण असुर भूखे मरने पर विवश हो गये हैं।

संक्षेप में सभी आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में आदिवासियों के घोर आर्थिक संकट को उकेरा गया है। ये आदिवासी अपनी अत्यंत मुलभूत आवश्यकता अन्न के लिए खानाबदोश होने पर विवश हैं। संवेदनशील उपन्यासकारों ने आदिवासियों की मूल समस्या को प्रस्तुत करते हुए किसी निश्चित समाधान की अपेक्षा की है।

.....

—संदर्भ ग्रंथ—

- 1) जंगल जंगल लूट मची है— अमरेन्द्र किशोर, पृ. 24
- 2) अल्मा कबूतरी— मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 113
- 3) काला पहाड़— भगवानदास मोरवाल, पृ. 18
- 4) जहाँ बाँस फूलते हैं— श्रीप्रकाश मिश्र, पृ. 50
- 5) जहाँ बाँस फूलते हैं— श्रीप्रकाश मिश्र, पृ. 130
- 6) जंगल जहाँ शुरु होता है— संजीव, पृ. 23
- 7) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 08
- 8) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 12
- 9) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 18
- 10) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 51
- 11) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 52
- 12) रेत— भगवानदास मोरवाल, पृ. 147

- 13) काला पादरी— तेजिन्दर, पृ. 21
- 14) काला पादरी— तेजिन्दर, पृ. 71
- 15) काला पादरी— तेजिन्दर, पृ. 107.08
- 16) रेत— भगवानदास मोरवाल, पृ. 147

## चतुर्थ अध्याय

' आदिवासी केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में  
सामाजिक विमर्श'

## चतुर्थ अध्याय

### आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में चित्रित सामाजिक आयाम

विवेच्य शोध प्रबंध में आदिवासी समाज के सामाजिक आयाम को मुख्य रूप से दृष्टि में रखा गया है, क्योंकि व्यक्ति के जीवन में समष्टि का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति से समष्टि और समष्टि से व्यक्ति की स्थापना होती है, संबंध होता है। व्यक्ति को अपने विचारों के आदान-प्रदान के लिए, अपनी सुरक्षा के लिए समाज की आवश्यकता होती है। आदिवासी समाज भी जंगलों में भटकते रहने के कारण समूह बनाकर रहता था। अतएव आदिवासी उपन्यासों के सामाजिक पक्ष का अध्ययन, विश्लेषण आवश्यक बन जाता है। परिवार समाज का एक अंग है। इसलिए प्रस्तुत अध्याय में परिवार उसके पश्चात् समाज और नारी के स्थान को दृष्टि में रखकर नारी समाज का अलग से अध्ययन किया गया है।

आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में परिवार की महत्ता को स्वीकार किया गया है—

वीरेन्द्र जैन के 'पार' उपन्यास में आदिवासी समाज की परंपरा अंतर्निहित है। यह उपन्यास जीरोन खेरा के आदिवासियों को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। इस समाज में मुखिया अगले मुखिया को चुनता है। जब मुइया को लड़का हुआ तो मुखिया ने उसका नाम गुनिया रखते हुए यह घोषणा की कि यही अगला मुखिया होगा। मुइया बहुत खुश हुई क्योंकि अब वह मुखिया माई कहलायेगी। मुखिया का हुक्म था कि पाँच वर्ष तक मुइया गुनिया को दूध पिलायेगी और उसे अब माँ नहीं बनना चाहिए। परंतु दो वर्ष के बाद ही मुखिया माई की देह हरियाई बन गई। वह अपनी यौन भावना को नियंत्रित नहीं कर सकी। अतः उसका मुखिया माई पद चला

गया। अब फुलिया मुखिया माई हो गई। मुखिया को सभी काम आने चाहिए जैसे टपरा छावना, घन चलाना, हँसिया हल पॉजना, ढोल बजाना आदि।

इस समाज में मुखिया वही होता है जिसकी कोई औलाद नहीं होती। वह सबका हित और सबका मताई-बाप है। वही किसी एक की औलाद को बनाता है गुनिया अर्थात् अगला मुखिया। फुलिया जब मुखिया माई बनी तो उस पर यह बंधन आ गया कि वह किसी पुरुष से यौन संबंध न रखे। फुलिया मानती है कि उसके पति गुनिया पर किसी प्रकार का बंधन नहीं है। वह चाहे तो दूसरी औरत कर सकता है। विवाह न भी करें किसी स्त्री के चाहने पर उसको सुख दे सकता है, पूत दे सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि इस समाज में यौन संबंधों की पुरुषों पर कोई पाबंदी नहीं है।

आदिवासी समाज की समस्या नर्मदा परियोजना के कारण विस्थापन की है। जैसा कि वीरेन्द्र जैन ने लिखा है—“अब ये शहर वाले नदी बाँध रहे हैं। तब प्रलय आएगी। जो अब तक बचा है वह सब भी स्वाहा हो जाएगा। तब हम कहाँ जाएँगे? कैसे जिँएँगे?”<sup>1</sup> आदिवासी समाज में विवाह करना और पत्नी को छोड़ देना मामूली बात है। जब फुलिया मुखिया माई बन गई तब फुलिया के आग्रह पर उसके पति गुनिया ने मुझ्या से विवाह किया। गुनिया को यकीन होन लगा था कि अब जीरोन खेरा नहीं बचेगा, बांध के कारण टूट जायेगा। आदिवासी समाज बिखर जायेगा। न मुखिया के चाहने पर न गुनिया के चाहने पर इसे बचाया जा सकता है।

‘जंगल जहाँ शुरु होता है’ में आदिवासी समाज के शोषण का विवेचन किया गया है। डाकू आदिवासी थारु समाज का शोषण करने लगी। उन्होंने थारुओं से कहा कि वे उनका साथ

दे। जिसके बदले में वे ठेकेदारों, जमींदारों से आदिवासियों को जमीन दिलवा देंगे। परंतु वास्तविकता यह है कि एक भी डाकू किसी जमींदार के खिलाफ नहीं बोला। बल्कि थारुओं और धांगड़ों का शोषण करने लगा।

कुमार और मास्टर साहब में थारु शब्द को लेकर बहस होती है। थारु शब्द ठाकुर से घिसकर बना है या स्थिर शब्द से। मास्टर साहब का मत है कि थारु मुख्यतः शाक्य है—“ये शाक्य हैं। स्थिर स्वभाव, शांत, गंभीर विष्वासी, धैर्यवान, यहाँ की जनसंख्या के एक लाख पचास हजार, यू. पी. के एक लाख तीस हजार, कुछ नेपाल के—कुल मिलाकर तीन लाख थारु कोई नहीं गौतम बुद्ध के वंशज हैं।”<sup>2</sup>

इस उपन्यास में थारु आदिवासी समाज का जीवन संघर्ष और डाकू समस्या व्यक्त हुई है। आदिवासी समाज के प्रमुख पात्र बिसराम, जोगी, श्यामदेव, मलारी आदि पुलिस, डाकू, जमींदार, ठेकेदार आदि से भयभीत और आतंकित है। पुलिस उन्हें डाकूओं का ‘पैरासाइट’ मानती है तो डाकू पुलिस के खबरी मानते हैं। बिसराम बेटी की मौत पर यही कहता है कि—‘हमारा तो हर तरीका से नौबत लिखल बा, बेटे जमींदार से, डाकू से, देवता पिता से, भूत भवानी से, पुलिस लेखपाल से...अरे कवन सुख देखल ऐ बेटो—ई—ई—ई।’

थारु आदिवासियों का क्षेत्र मिनी चंबल इसलिए कहा जाता है कि यहाँ डाकूओं का वर्चस्व है। आदिवासी काली डाकू बनने पर विवश हो जाता है। उसीके शब्दों में—‘हमने नहीं चुनी थी यह जिनदगी। नहीं बने थे हम इन राहों के लिए, फिर देखो कैसे धकेल दिये गए।’



परिवार समाज का एक अंग है। परिवार में ही व्यक्ति को संस्कार प्राप्त होते हैं जो उसे समाज में रहने के लिए आवश्यक हैं। भारतीय समाज की प्रमुख विशेषता पारिवारिक व्यवस्था है। यह व्यवस्था आदिम समाज में भी देखी जाती है। 'पठार पर कोहरा' उपन्यास की रंगेनी को अपने पति की याद आती है। यदि वह होता तो उनके बेटे सोनारा को तीर बनाना, धनुष्य की डोरी तानना, खटियाँ बुनना, रस्सी बॉटना, शिकार की टोह लगाना ऐसी हजार बातें सीखाता। जैसा कि आदिवासियों के बच्चों को उनके पिता सीखाते हैं। सोनारा के पिता की याद आते ही रंगेनी की छाती धड़कने लगती है, आँखों की पुतलियाँ पसीजने लगती हैं। उसने अपने बेटे सोनारा को माँ-बाप बनकर पाला है। इस प्रकार रंगेनी सोनारा को संस्कारित करती है।

आदिवासी यद्यपि आर्थिक गुजारा करने के लिए कोई भी व्यवसाय करते हैं। जिनमें ताड़ी बेचना एक प्रमुख उद्योग है। परंतु रंगेनी नहीं चाहती कि उसका बेटा यह व्यवसाय करें। वह सोनारा को समझाती है कि—“कौनो जरूरत नहीं निसा-पानी बेचने की। कलाल कहीं का! ताऽऽड़ी बेचेगा,...दुर् रे! ऐसे रुपया जमा करेगा? धुत्त! कौनो भूखे मर रहे हैं का रे हम?”<sup>3</sup>

आदिवासी समाज निरक्षर है। संतान उत्पत्ति पर कोई प्रतिबंध नहीं। इसलिए यह समाज स्वास्थ्य-सुविधाओं के अभाव में ही रहता है। गजलीठोरी में पंद्रह घर हैं। जिनमें 7 वृद्ध हैं, 10 अर्धेड हैं और लगभग उतने ही नौजवान। शेष किशोर और बच्चें हैं। संतान उत्पत्ति पर जंगल में रोक नहीं होती। कम उम्र में विवाह और प्रतिवर्ष एक संतान का आगमन। इसलिए मृत्युदर बहुत अधिक है और सुविधाओं का अभाव है।

इस समाज को जंगल सेना आतंकित करती है। इस जंगल सेना से सभी डरते हैं। इसलिए साहू मास्टरजी को आगाह करते हैं कि जंगलसेना के विरुद्ध कुछ ना कहो। मास्टरी करने आये हो तो चुपचाप वही करों क्योंकि यदि ज्यादा बोले तो जीभपर राख मलकर बाहर खींच लेगी जंगलसेना। जंगलसेना सभी से हप्ता वसूल करती है। साहू संजीव को बताते हैं कि जंगलसेना को लेवी देनी ही पड़ती है। तब संजीव यह मत व्यक्त करता है कि—“सुनो साहू! विद्यालय शिक्षा का मन्दिर होता है। कोई मुनाफेवाला व्यापार नहीं होता जो मुनाफे में से कोई रिश्तत या लेवी दी जाए”। संजीव का स्वर ऊँचा हो गया, “और फिर क्या देख-रेख करती है तुम्हारी वह जंगल सेना? न स्कूल के लिए कमरे हैं, न बच्चे, न ब्लैकबोर्ड, न ही... आखिर क्या होता है विद्यालय के नाम पर मिलनेवाला इतना रुपया?”<sup>4</sup>

स्वतंत्रता के पूर्व गोरे लोग जंगल के बेटे का हक छीन लेते थे। मुण्डा लोगों का हक छीन लेते थे। इसलिए बिरसा मुण्डा ने अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांतिकारी आंदोलन छेड़ दिया था। इसी परंपरा को अपनाते हुए श्यामसुंदर जैसे आदिवासियों के शोषण के विरुद्ध आदिवासियों को जाग्रत करता हुआ सोनारा कहता है—“याद रखो बन्धु, जो लोग अपने बाप-दादा के दुःखों और उलगुलान को भुला देंगे, उन्हें अपने पुरखों से भी ज्यादा दुःख उठाने पड़ेगे, और फिर उस दुःख से छूटने के लिए लड़ाइयाँ भी उलगुलाल से बड़ी। इसलिए आदमी को अपने दुःखों से लड़कर उसका नाश करना होता है। अगर आज तुम श्यामसुंदर को सहते गये तो तुम्हारे बाल-बच्चों को इससे बहुत ज्यादा दुःख सहना...।”<sup>5</sup>

संजीव को शीघ्र ही अनुभव हुआ कि इस आदिवासी क्षेत्रों में साहू और तिवारी जैसे लोग हैं जो आदिवासियों का शोषण करते हैं। इस यथार्थ को व्यक्त करते हुए उपन्यासकार

लिखते हैं—“संजीव तो साहू की बातों से ही समझ गये थे इस गाँव की सामाजिक व्यूह—रचना। दो दिनों में ही पुष्टि हो गयी थी कि गजलीटोरी पर अघोषित रूप से गगनबिहारी साहू जैसे बनिए और बेचू तिवारी जैसे भू—सामन्त का कब्जा है। इसमें सहायक हैं इलाके में सक्रिय भूमिगत संगठन जिसे जंगलसेना कहते हैं। गाँव के अनपढ़ और सीधे—सूधे आदिवासियों पर राज कर रहा है गैरआदिवासी शक्तियों का गठबंधन।”<sup>6</sup>

उपन्यासकार को दुःख यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आदिवासियों के कल्याण की सैकड़ों योजनाएँ बनी हैं। परंतु इनका क्रियान्वयन नहीं हुआ। इसलिए जो राशि मंजूर की गई थी उसका 10 प्रतिशत भी आदिवासियों तक नहीं पहुँचा। कई योजनाएँ कागज पर चलती रही और कई योजनाएँ फाईलों के कवरों में दफन हो गईं।

संजीव जानता है कि उसके आदिवासी विकास के प्रयत्न में कई बाधाएँ विशेष रूप से साहू, जमींदार, जंगलसेना उसके विरोध में हैं। इसलिए वह सोनारा को समझाता है कि—“कल मैं रहूँ न रहूँ, पर बन्धु! मेरे बाद कोई दूसरा संजीदा गाँव में आये तो उसे बस कम्युनिस्ट मानकर उससे दूर—दूर मत भागने लगना। कोई कुछ भी तुम्हें समझाए, अपनी समझ पर भरोसा करना।”<sup>7</sup>

समाज की यह परंपरा रही है कि जो महानताएँ करता है उसे जीवित नहीं रहने दिया जाता। इसी स्वार्थी प्रवृत्तियों के कारण संजीव की हत्या कर दी जाती है।

परिवार में माँ की भूमिका अहम् होती है। मातृत्व उसका ध्येय होता है। वह माँ बनकर अपने जीवन को सार्थक मानती है। ‘पिछले पन्ने की औरतें’ उपन्यास में आदिवासी बेड़नी समाज की फुलवा ने जब अपनी पहली संतान को जन्म दिया और उसे गोद में लेकर छाती से लगाया

तो अत्यंत प्रसन्न हुई। 'आखिर माँ तो माँ होती है' चाहे वह अपनी देह का सौदा करनेवाली हो अथवा सात पर्दों के अंदर रहनेवाली सती—सावित्री हो।

प्रत्येक बेड़नी के एक से अधिक भाई होते हैं। वे वैवाहिक जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी अपनी गृहस्थी तथा पत्नी, बच्चों होते हैं परंतु कोई निश्चित रोजगार न होने के कारण वे परिवार सहित अपनी बहन पर निर्भर रहते हैं। बहन बेड़नी का व्यवसाय करती है। इसलिए पूरा परिवार सुखी रहता है और आश्चर्य यह है कि भाई को अपनी बहन के अनैतिक कार्य पर कोई आपत्ति नहीं होती।

श्रीमती अजित गुप्ता के उपन्यास 'अरण्य में सूरज' में आदिवासी भील समाज का चित्रण हुआ है। उपन्यास में पंचायती द्वारा किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद 'मौताणा' एक कुप्रथा है। मौताणा अर्थात् एक खाजाना होता है जो सभी को चुकाना होता है और इसी कारण अनेक परिवार आर्थिक रूप से संकटग्रस्त हो जाते हैं। सोहना को उसके पिता सेठ के पास गिरवी रखते हैं। भाई के आँख की ऑपरेशन के लिए उन्हें पैसे की सख्त जरूरत है। अतः सोहना को बंधुआ मजदूर बनने को विवश होना पड़ता है। लेखिका ने इस समाज की यह वास्तविकता वर्णित की है कि बच्चों की जो उम्र मौज—मस्ती की है, पाठशाला जाने की है। उस उम्र में ये बच्चे आजीविका के लिए अथक परिश्रम करते हैं। बालविवाह जैसी कुप्रथा समाज में व्याप्त है। दीपू का विवाह पंद्रह वर्ष की अवस्था में और चंदना का विवाह तेरह वर्ष की अवस्था में होता है। इसका कारण आदिवासियों का अज्ञान है। समाजसुधारक गुरु परमानंद इन भीलों के जीवन में चेतना निर्माण करते हैं। वे सोहना को समझाते भी हैं कि बदलाव एकदम से नहीं आता शनैः शनैः आता है। इस बदलाव के लिए मनुष्य में इच्छाशक्ति होना आवश्यक है।

## समाज —

आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में आदिवासी समाज का सर्वांगीण चित्रण किया गया है—

मनमोहन पाठक के 'गगन घटा घहरानी' में आदिवासी समाज का सर्वांगीण चित्रण हुआ है। इसमें उराव आदिवासियों के सामाजिक, आर्थिक परिवेश की प्रस्तुति हुई है। इस उपन्यास में आदिवासियों के सामाजिक पक्ष को उभारते हुए वीरेंद्र यादव ने लिखा है—“झारखंड के पलामू क्षेत्र का आदिवासी जीवन व संघर्ष इस उपन्यास में अपनी संपूर्णता के साथ उपस्थित है। ओरॉव जनजाति की इस संघर्ष गाथा में आदिवासी जीवन का सौंदर्य, शौर्य, विवशता, कुरूपता, अभाव या बदलाव की चेतना एक साथ उपस्थित है। यह समूचे प्रांतर तथा आदिवासी समाज के व्यक्तित्वान्तरण की औपन्यासिक गाथा है।”<sup>8</sup> जमींदार रायसाहब के द्वारा उराव समाज का शोषण किया जाता है। इसका प्रमाण इस प्रसंग में मिलता है। जब उनका आदिवासी सेवक वृद्ध हो जाता है तो वह किसी काम का नहीं रहता। तब रायसाहब उसके हाथ-पैर बांधकर भूखे चीते के सामने फिकवा देते हैं। आदिवासी समाज हमेषा अन्याय को सहता रहा है। उपन्यास में यह प्रतिपादित किया है। कि अब आदिवासी जाग्रत हो रहे हैं। आकाश में घटाए घहरा रही है। वे अपने शोषण के विरुद्ध आवाज उठाते हैं। इसका कारण समसामायिक युग में आ रही सामाजिक चेतना है। 'गगन घटा घहरानी' उपन्यास का शीर्षक ही यह सिद्ध करता है कि आदिवासियों की एकता और सामूहिक शक्ति व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष के लिए तैयार है।

'जहाँ बास फूलते हैं' उपन्यास में लुशेईयों का चित्रण हुआ है। दोला और नानी में प्रेमसंबंध है। दोला रालते कौम का है इसलिए लुशेई कानून उस पर लागू नहीं होता है। तब

पंचायत का बुजुर्ग यही कहता है—“जुर्म लुशेईयों के बीच करेगा, लुशेईयों के साथ करेगा और आइन बधारेगा रात्ते का? अरे दस कोड़े के साथ इसे बीस जूता भी मारना चाहिए और जूते का पैसा भी लेना चाहिए।”<sup>9</sup>

माइकेल ने देखा कि श्रीनगर से जम्मू और रामेश्वरम् के इस सड़क पर अवैध बच्चों की लाशें हैं। हर षहर में वेष्पाओं की जमात है। बलात्कार और अपहरण के मुद्दे हैं। परंतु मिजो में ऐसा नहीं है। कामी कहती है कि—‘यहाँ बरगद के पास युवती, जिस युवक का नाम लेती है। उससे शादी हो जाती है।’

मिजो समाज हमेशा स्वतंत्र रहा है। जब से लुशेईयों के बेटों ने इस धरती पर पाँव रखे तब से वे अपनी कौम पर शासन चलाते रहे। पहले इन जंगलों में पशु—पक्षी रहते थे। नदी के जल में मछलियाँ और घोंघे मिलते थे। जब अंग्रेज आये तो इनसे इनके पूर्वजों ने संघर्ष किया। जब पादरी आया तो उसका उपदेश सुना। यहाँ के आदिवासी समाज का सदैव शोषण होता रहा है। जब फसल कटकर आती है तो जंगल सरकार के दावे टैक्स लेने आ जाते हैं। पूरे गाँव की तलाशी ली जाती है। उन पर जुल्म ढाया जाता है। एक घटना उपन्यास में चित्रित है। कोई चालीस जवानों की टोली हैवानियत पर उतर आई। कुल सिपाहियों ने गाँवों से घरों के चसरे काट डाले। बरतनों को पीट—पीटकर तोड़ दिया। अनाज के भंडारों में मलमूत्र किया। इन्हें देखकर स्त्रियाँ एक घर से दूसरे घर भागने लगी। जो पकड़ में आ गईं उन्हें अपनी स्तनों और गुप्तांगों पर बूटों की मार सहनी पड़ी। मर्दों ने संगठित होकर उसका विरोध करना चाहा तो उस पर अंधाधुंध फायरिंग किया गया।

जब गाँव में मुख्यमंत्री आने के इशतहार छपे तो उन पर महरुम चौधरी अमीन की तस्वीर भी छपी हुई थी। जिसमें चौधरी साहब के मेवो जाति के लिए किये गये योगदान को भी छापा गया था—“उदाहरण के लिए चौधरी साहब ने भारत-पाक विभाजन के समय किस तरह मेवात के अल्पसंख्यकों यानी हिंदुओं की एक बत्तख की तरह अपने बच्चों को पंखों के नीचे छिपा कर उनकी हिफाजत की।”<sup>10</sup> मेव आदिवासी अत्यंत भोले-भाले है। इसलिए मनीराम कहता है कि—‘यही मेरी सुरी मेव की जात इतनी भोली, और बावली है कि चाहे जैसे चाहो चूतिया बना लेओ...।’ वास्तव में ‘मेव’ शब्द का असली मतलब है ‘पहाड़ी’ जो इस कौम के मूल और मेवात की विशेषताओं की ओर इशारा करते है।

‘अल्मा कबूतरी’ उपन्यास में कबूतरा समाज का चित्रण हुआ है। इसमें दो समाजों का वर्णन है। एक और आदिवासी कबूतरा समाज तो दूसरी और है सभ्य समाज जिसे कबूतरा ‘कज्जा’ कहते है। इन दोनों समाजों में होनेवाले संघर्ष को चित्रित किया गया है। आदिवासी समाज शराब बेचने और चोरी करने के धंदे में होने के कारण पुलिस द्वारा सताया जाता है। उपन्यास में समाज में व्याप्त पारिवारिक संघर्ष, इस समाज पर किया जानेवाला अत्याचार, इस समाज में व्याप्त जादूटोना, अंधविश्वास, इस समाज के रीति-रिवाज, लोकपरंपराएँ विस्तार से और गहराई से चित्रित हुई है। निश्चित ही मैत्रेयी पुष्पा ने आदिवासी समाज का सूक्ष्म अध्ययन किया है।

कबूतरा पुरुष प्रधान समाज है। इस समाज में पंचायत का स्थान महत्वपूर्ण है। प्रमुख व्यक्ति को ‘मुखिया’ कहा जाता है। कभी-कभी रामसिंह जैसे लोग मुखिया के आदेश को नहीं मानते है। कबूतरा समाज के संबंध में प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा है कि—“कभी-कभी सड़को,

गलियों में घूमते या अखबारों की अपराध सुर्खियों में दिखाई देनेवाले कँजर, सॉसी, नट, मदारी, सपेरे, पारदी, हाबूड़े, बनजारे, बाबरिया, कबूतरे न जाने कितनी जनजातियाँ हैं जो सभ्य समाज के हाशिये पर डेरा लगाए कामचलाउ ही बना रहता है। उनके लिए हम हैं कजजा और 'दिकू' यानी सभ्य, 'संभ्रांत', 'परदेशी', उनका इस्तेमाल करनेवाले शोषक उनके अपराधों से डरते हुए, मगर उन्हें अपराधी बनाए रखने के आग्रही।<sup>11</sup>

आदिवासी समाज में स्त्री पुरुषों के बीच यौन संबंध स्थापित करने के लिए किसी प्रकार का बंधन नहीं। इसका कारण यह है कि शराब और चोरी के धंदे के कारण समाज का आधा वर्ग या तो जेल में होता है या जंगल में भाग जाता है।

कबूतरा समाज को अपराधी समाज घोषित किया गया है। डॉ. मजूमदार लिखते हैं—“भारत में अपराधी जनजातियों का तात्पर्य उन जनसमूहों से है जो जाति या समाजिक संबंधों के आधारपर एक दूसरे से बंधे होते हैं, जो समाज-विरोधी कार्य—चोरी, ठगी, डकैती, हत्या और दूसरों को शारीरिक चोट पहुँचाने का काम करते हैं।<sup>12</sup> अंग्रेजों ने उन्हें जन्मजात अपराधी माना था। अब अधिनियम लागू हो गया कि कबूतरा, मोघिया, कलंदर, सॉसी, पारदी जैसी जातियों के लोगों के धंदे अपराध माने जाते हैं क्योंकि वे वारदाते करते हैं। धीरज जानता है कि कबूतराओं की विशेषता यह है कि वे अपनी जान दे सकते हैं पर कभी भेद नहीं खोलते। वे पुलिस की मार के सामने झुकते नहीं हैं।

कबूतरा समाज की विशेषताओं को राणा ने इन शब्दों में चित्रित किया हैं—“पिटना-पीटना, मरना-मारना हमारी जिंदगी है। गुनिया, ओझा, मुखिया और पुलिस हमारे



भगवान हैं। कज्जा लोग माईबाप और मालिक। भूख-प्यास हमारी गुड़िया है। देह गर्मी से जलने लगती है, हम चोरी से तालाब में नहा लेते हैं। जाड़े में हड्डियाँ पटकने लगती हैं, जंगल में से इंधन चुराकर देह सेक लेते हैं। सब लोग हमें माफ कर दें, बस इतना ही हम चाहते हैं।”<sup>13</sup>

राकेश कुमार सिंह का ‘पठार पर कोहरा’ उपन्यास में आदिवासी समाज का सर्वांगीण चित्रण किया गया है इसके अंतर्गत समाज की विशेषताएँ, इसकी दुर्बलता, इनका रहन-सहन, इनमें निहित सामाजिकता, इनकी न्यायव्यवस्था, इनके संस्कार अभिव्यक्त हुए हैं। आदिवासी समाज की ये विशेषता होती है कि वे अत्यंत जीवट वाले होते हैं। यदि दों जन साथ हो तो जंगली भालू को भी खदेड़ सकते हैं। चार निहत्थे यदि साथ-साथ हो तो चिते को भी भगा सकते हैं परंतु बेवजह रक्तपात आदिवासियों के स्वभाव के विपरीत है। यथासंभव आदिवासी आवश्यक हिंसा से दूर रहते हैं।

‘पठार पर कोहरा’ का नायक संजीव गजलीठोरी में शिक्षक के रूप में नियुक्त होता है। इस गाँव जाने के लिए उसे पास के स्टेशन पर उतरना होता है। इस तुपकाड़ीह स्टेशनपर सन्नाटा है। अतः वह स्टेशन मास्टर से नियुक्त स्थान की जानकारी लेना चाहता है। तब परेरा आदिवासी समाज के संबंध में कहते हैं कि –“उरॉव मुण्डा ही ज्यादा हैं इधर, बल्कि मुण्डा ही ज्यादा मिलेंगे...ऐण्ड यू नो, मुण्डाज आर कम्परेटिवली मोर अवेकण्ड ऐण्ड प्रोग्रेसिव रेस...। परेरा ने संषकित संजीव का हौसला बढ़ाया, “मुण्डा खतरनाक नहीं होते।”<sup>14</sup>

आदिवासी समाज के रहन-सहन को उपन्यासकार ने संजीव के माध्यम से विवेचित किया है—“दोहरा किये लुंगी या पतले कपड़े की धोती बाँधे पुरुषों की देह पर सूत के नाम पर

कुछ और दिखा तो गले मे पड़ा लाल या काला मोटा धागा जिसमें एक—दो तावीज या नाखून दाँत अवश्य थे। स्त्रियों के शरीर पर घुटनों से चार छः अंगुल नीचे तक खूब कसकर बँधी सस्ती साड़ी थी जो देह को घेरा लेती छातियों पर से इस तरह गुजरती थी कि ऊपर से कपड़ों की कोई आवश्यकता ही न रहे। संजीव ने स्त्रियों के ललाट, भौंहों के मध्य, टुड्डी, कपोलों, गरदन, छाती, बॉहों, हाथों यहाँ तक कि पैरों की उँगलियों तक पर गोंदने गुदे देखे।”<sup>15</sup>

आदिवासी यद्यपि आर्थिक सुस्थिति में नहीं होते है। परंतु अतिथि सत्कार इनकी विशेषता है। रंगेनी भी संजीव के लिए खाना बनाती है। हलका सरसों का तेल चिपुड़ी रोटियों, साग अभिनव अतिथि सत्कार का स्नेह जुड़ जाये तो मानो मिल जाये। आदिवासी में छोटी—छोटी बातों को लेकर आपस में संघर्ष होता रहता हैं सुगना और हरमू दोनों में गाली—गलौज होती है। तब संजीव उन्हें समझाता है कि—‘लड़ाई तो दो मर्दा के बीच की है और तुम्हारी गालियाँ भोग रही है घर औरतें...यह कोई मर्दवाली बात है।’

आदिवासियों में पारस्परिक झगड़ों को निपटाने के लिए पंचायत व्यवस्था है। इसलिए संजीव उन्हें समझाता है कि—‘‘तुम मर्दा में कोई झगड़ा—झमेला है तो पंचायत बैठा लो। जो पंचायत की बात भी नहीं माननी तो आपस में लड़कर फैसला कर लो, पर घर की औरतों की इज्जत तो न उतारो।’’<sup>16</sup>

आदिवासियों को अपने अधिकारों के लिए जाग्रत करने के लिए संजीव उन्हें समझाते है कि इन साहुओं के साथ ही व्यापारियों से मुक्त होने के लिए आदिवासियों को संघर्ष करना पड़ेगा। क्रांतिकारी आंदोलन छेड़ना पड़ेगा। बंदूक के समक्ष अपने बाणों का उपयोग करना

पड़ेगा—“जंगल में बंदूक से ज्यादा शक्तिशाली होंगे ये बाण। तुम्हारी ताकत बेचू तिवारी से सौ गुनी ज्यादा हो जायेगी यदि तुम परहा—पंचायत के अपने जैसे मित्र मुण्डा युवकों में एकता बना सको। एक बार सिर में गमछा बाँधो, कंधे पर धनुष टाँगकर देखो, फिर कोई सादान तुम्हें डरा नहीं सकेगा। गजलीठोरी के राजा तुम होंगे मुण्डा और यह जंगल तुम्हारा होगा न किसी सादान या बेचू तिवारी का”<sup>17</sup>

आदिवासी समाज की भावनाओं और संवेदनाओं को सदैव कुचला गया है। भौतिकवादी संस्कृति ने इस समाज पर अन्याय ही किया है। इस समाज को शिक्षा से वंचित ही रखा गया है।

यह एक तथ्य है कि आदिवासी समाज की जीविका जंगल और जंगल की उपज से जुड़ी हुई है। वे केवल अपने जंगल को पहचानते हैं। इसी कारण गरीबी रेखा और जैव संपदा संरक्षण एवं संवर्धन शब्दों से वे अनभिज्ञ हैं। उन्हें शासन, साहुकार, ठेकेदार वननाशक, अधिकारी और ‘अविवेकी’ होकर जंगल से विस्थापित किया जा रहा है।

आदिवासी क्षेत्र में सामाजिक शोषण भयंकर रूप से व्याप्त है। वे रोटी—पानी के लिए तरसते रहते हैं। आदिवासी समाज के लिए जंगल ही उनका सर्वस्व है, उनका प्राप्य है, उनका आत्मा है। परंतु वर्तमान स्थिति यह है कि—“आजाद भारत मगर गुलाम आदिवासी, कड़े—कँटीले नियम—कानून पर कटते जंगल, मालामाल होते लकड़ियों के तस्कर। जो जंगल बचाए वह दोषी और तस्कर बन जाए राज्य का वन मंत्री। जंगलों से, प्रकृति से सहजीवी संबंध रखने के एवज

में सरकार प्रायोजित आतंक, पिटाई, बंदूकों की गूँज और जेलों की प्रताड़ना—आजादी के बाद वन्य समाज के साथ ऐसे ही बर्ताव हो रहे हैं।”<sup>18</sup>

आदिवासी बेड़िया समाज प्रारंभ से ही आलसी रहा है। इसी कारण इस समूह की औरते नाच—गाकर, छिट—पुट सामान बेचकर तथा चोरी करके अपनी आर्थिक समस्या हल करती रही है। जब रसूबाई का परिचय ग्रामटीला के मालगुजार महाराज सिंह से हुआ तो वे उसकी सुंदरता पर मोहित हुए और उन्होंने रसूबाई की सब प्रकार की सहायता की। उसने रसूबाई को जमीन दी। जो एक गाँव के रूप में विकसित हुआ है और पूरी तरह से बेड़िया समाज का गाँव है। यह गाँव आज पथरिया बेड़नी के नाम से जाना जाता है।

बेड़िया समाज यथास्थिति को व्यक्त करते हुए लेखिका शरद सिंह ने लिखा है कि—“ये परंपरागत रूप से घुमक्कड़ और लुटेरे थे। ये चटई की झोपड़ी में अथवा तंबुओं में रहते थे। इनमें स्वच्छंद यौनाचार की प्रथा थी इनके दल की सभी स्त्रियों दल के सभी पुरुषों के साथ यौन संबंध बनाती है। इनके घर में सभी पुरुष के बीच विवाह की बाध्यता नहीं रहती थी।”<sup>19</sup> यद्यपि अन्य समाज में वेश्यावृत्ति को हेय दृष्टि से देखा जाता है। परंतु बेड़िया समाज में इस हेय नहीं माना जाता। विशेष बात यह है कि इस समाज की स्त्रियों को अपने समाज की स्त्रियों को अपने समाज के परिवार में अपेक्षाकृत अधिक अधिकार प्राप्त है। वे अपनी इच्छानुसार खर्च करने के लिए स्वतंत्र है और अपनी इच्छानुसार पुरुष रखैल भी रख सकती है।

वेश्यावृत्ति निर्मूलन योजना, जाबाली योजना, सत्यशोधन आश्रम आदि संस्थाओं ने बेड़नी के उध्दार के लिए प्रयत्न किये हैं। उनके लिए सरकारी सुविधा जुटाई है। उन्हें स्वास्थ्य

संबंधी जानकारी दी है, उनके बच्चों के विवाह करवाये है, उन्हें भूखंड उपलब्ध करवाये है। बच्चों के लिए शिक्षा की सुविधा उपलब्ध करवायी है। श्यामा की बड़ी बेटी गुड्डी जिसका स्वयं उसीके पति ने देह व्यापार कें लिए मजबूर किया था। उसका केस एक सक्षम समाज सेवक वकील को सौंपा है और यह आशा की गई है कि आनेवाले समाज में आदिवासी बेड़नियों की स्थिति में सुधार होगा। प्रा. अंजना विजन के शब्दों में—“युवा लेखिका डॉ. शरद सिंह ने ‘पिछले पन्ने की औरतें’ नामक अपने प्रथम उपन्यास में सभ्य समाज का ध्यान उस और आकर्षित किया है जहाँ मध्यप्रदेश के सागर जिले में बसे पथरिया गाँव के आदिवासी समाज के बेड़िया समुदाय की औरतें आज भी त्रासद जीवन जी रही हैं, पुरुष सत्ता प्रधान समाज में दैहिक, मानसिक तथा आर्थिक शोषण का शिकार हो रही हैं। रिपोर्ताज की शैली में, बिना किसी लाग लपेट की पूरी ईमानदारी के साथ इस उपन्यास में लेखिका ने सदियों से संघर्ष गाथा को प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है।”<sup>20</sup>

तेजिन्दर का उपन्यास ‘काला पादरी’ में आदिवासियों के सामाजिक जीवन का चित्रण किया गया है। जेम्स खाखा ईसाई बनने के पूर्व आदिवासी था। उस समय आदिवासी समाज की स्थिति को व्यक्त करते हुए वह आदित्य से कहता है—“ सुनो आदित्य, यह सच है कि प्रभु यीशु के हमारे जीवन में आने से पहले हमारे अंदर कोई आवाज ही नहीं थी। कीड़ों की तरह रेंगता हुआ यह जीवन जिसकी डोर राजा दुर्जन साल के वंशजों और वहशी लुटेरों के हाथों में थी। अपमान, जिल्लत और गैर—संवेदनशीलता से भरा एक गटर था जिसमें हम रहते थे बस किसी तरह। पादरियों ने हमें उस गटर से बाहर निकाला, ठीक है, लेकिन दैट वाज़ अवर पास्ट, यू हैव टू टेक नोट ऑफ़ अवर टुडे,”<sup>21</sup> जेम्स खाखा के इस मंतव्य से ज्ञात होता है कि आदिवासी

कितने दयनीय स्थिति में जी रहे है। अंबिकापुर से लगभग 30 किलोमीटर दूरी पर एक छोटा गाँव है—महेशपुर जहाँ आदिवासी रहते हैं। उनकी आबादी 500 के लगभग हैं और कुल 85 परिवार हैं। गाँव घने जंगल में है। यहाँ के आदिवासी मछली पकड़ने का व्यवसाय करते है जिन्हें 'टोम्पो' कहा जाता है।

इसी आदिवासी क्षेत्र में ब्रदर हरपाल रहते है जो सिख धर्म छोड़कर ईसाई बन गये है। उनका दृष्टिकोण है कि ईश्वरीय आदेश के कारण उनमें जीवन का, इस पृथ्वी पर जन्म लेने का उद्देश्य समझ में आ गया है। उन्हें आदिवासियों की सेवा करनी है और अपने भीतर उतरे दृष्टि से उनकी 'चंगाई' करनी है।

आदिवासी समाज जो थोड़ा बहुत अन्न मिल जाता है उसी पर निर्भर है। वह खाओ, पीओ, मौज करो की विचारधारा लिए हुए हैं। इसलिए वे कोदो की फसल करते है और थोड़ा धान उगता है उसका चारा निकालकर हंडिया एक प्रकार की शराब छानते है और नाचते हैं। वे अपनी मस्ती में खोये रहते है। इनके रहन—सहन के संबंध में उपन्यासकार ने लिखा है कि—“गाँव के पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही एक जैसी धोतियां पहना करते। बच्चे नंगे रहते, थोड़ा बड़े होते तो मां—बाप की पिछले साल की धोतियां वे भी अपने उपर ओढ़ लेते। इस गाँव में और कुछ भी नहीं था। न बिजली, न स्कूल, न तालाब, न मंदिर और न ही कोई गिरिजाघर। कुछ बकरियां थीं और कुछ मुर्गियां।”<sup>22</sup>

आदित्य बैंक में कार्यरत है। उसके ब्रँच मॅनेजर गुप्ताजी उसे सलाह देते है कि वह जेम्स खाखा और आदिवासियों के साथ ज्यादा संबंध न बनाये। उनका आदिवासियों के संबंध में

पूर्वाग्रह है इसलिए वे कहते हैं—“ये जो यहां के आदिवासी लोग हैं न, ये आधे तो जंगली हैं और आधे ईसाई हैं, जैसी इनकी चमड़ी मोटी, वैसी इनकी बुद्धि। तुम इनके पास क्यों जाते हो?”<sup>23</sup>

उपन्यासकार ने आदिवासी उराँव के संबंध में लिखा है कि—‘उराँव नाम रावणपूत या अरावण से बना है जो अंततः उराँव हुआ।’ यह भी कहा जाता है कि उराँव अपने मूल में भारतीय प्रदेश के ही हैं अंग्रेजी में इन्हें ‘अटावक्थनस पीपल्स’ कहा गया है। जिसका अर्थ देशीय या आदिवासी जाति होता है उराँव आदिवासियों के संबंध में निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता। आदिवासी समाज का शोषण जमींदार एवं ओझाओं द्वारा होता है। उपन्यासकार के शब्दों में—‘यहां के आदिवासियों के लिए जमींदारों और भूत प्रेतों में कोई खास फ़र्क नहीं था। दोनों ही एक बार जो इन्हें पकड़ते थे तो फिर पूरा निचोड़ कर भी नहीं छोड़ते थे।’ ऐसी स्थिति में इन आदिवासियों का मिशनरियों की तरफ आकर्षित होना स्वाभाविक है। जेम्स खाखा के शब्दों में—‘मिशनरीज़ ने हमारे सामने जो भी विकल्प रखे वह हमारी भावनाओं के अनुकूल ही रखे, हमारे उपर कुछ भी अपनी और से थोपा नहीं। हमारी लोक कथाओं में पिता को उतना महत्व नहीं दिया जाता जितना की मां को दिया जाता है। मिशनरीज़ ने हमारे सामने मां मरियम की आकृति रखी, इसके अलावा भी उन्होंने अपने अहुत सारे रीति रिवाज और संस्कार हमारी जीवन शैली के साथ मिला लिये। जिस समय हमें अपने ही देश और समाज के लोगों के बीच जंगलियों और नंगे आदिवासियों की तरह रहना पड़ रहा था, ऐसे कठिन समय में उन्होंने हमें बताया कि तुम मनुष्य हो, हमारी तरह। यह हमारे लिए एक ऐसी बात थी कि जिसके सामने जीवन छोटा था और हमारे पूर्वज उनके साथ हो गये।’<sup>24</sup> इस मंतव्य से स्पष्ट होता है कि आदिवासी क्यों ईसाई धर्म की ओर बढ़ते चले गये।

‘काला पादरी’ उपन्यास में आदिवासियों के सामाजिक जीवन को रेखांकित करते हुए डॉ. संजीव कुमार दुबे लिखते हैं—‘तेजिन्दर ने ‘काला पादरी’ के विन्यास में आदिवासी अंचलों में फैले अंधविश्वास मान्यताएँ और कर्मकांड भुखमरी, अकाल, लूट-खसोट, प्रशासनीक असंवेदनशीलता, सामंतवाद, आदिवासी नेतृत्व के कठपुतलीपन तथा नई राजनीतिक करवट को बड़ी गंभीरता से चित्रित किया है। भूख से मरते हुए व्यक्ति की झाड़-फूँक करने वाले बैगा और विशप हाउस से जुड़कर अपनी कथित चमत्कारिक शक्ति से हर दुःख पीड़ा का इलाज करने वाले ब्रदर हरपाल की बुनियादी मान्यता और भोले भाले लोगों को मूर्ख बनाने वाली ‘पाप की थियरी’ एक ही है।’<sup>25</sup>

‘रेत’ में आदिवासी समाज के जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। इस समाज में जाति पंचायत प्रमुख होती है। सभी उसके फैसले को मानते हैं। गंगा बुआ बैदजी को बताती है कि—‘हमारे कंजरों में कतल भी हो जाये तो भी पुलिस नहीं आती है क्योंकि हमारी बिरादरी की पंचायत जो फैसला करती है। उसे सभी स्वीकार करते हैं।’ कंजर जंगलों में घूमनेवाली आदिवासी जमात है। प्राचीन भारतीय सबसे प्रमुख खानाबदोश जाति है। इनकी उत्पत्ति माना गुरु और नालिन्दा से हुई है। नेस्फील्ड के अनुसार—‘कंजरों की सात उपजातियाँ हैं, किन्तु हैं मुख्य चार ही अर्थात् कुछबन्ध जो झाड़ू बनाते हैं। पत्थरकट, जो पत्थर काटते हैं। जल्लाद, जो मरे हुए जानवरों को उठाने के साथ-साथ फॉसी भी देते हैं और रच्छबन्ध, जो जुलाहों का करघा बनाते हैं।’ इस आदिवासियों में इज्जतदार लोगों के समान तलाक देना आसान नहीं है। पति एक ही छत के नीचे दो-दो बदलेगा पर पहली को नहीं छोड़ेगा। इसका कारण यह है कि यदि कोई पति अपनी पत्नी को तलाक देता है तब उसे एक बड़ी धनराशी पत्नी को देनी पड़ती है।



यह धनराशी उतनी ही होती है जितने में वह ब्याह कर लाया है। इसलिए ऐसी स्थिति में ऐसा मर्द पहली को छोड़ने के बजाय अपने घर में दूसरी बिठाये रखता है। इस समाज की जो स्त्रियाँ वेश्या व्यवसाय करती हैं उन्हें खिलावड़ी और जो केवल घर संभालती हैं उसे 'भाभी' कहते हैं। वैसे इस आदिवासी समाज के पुरुष चोरी करते हैं और शराब बेचते हैं और अधिकतर स्त्रियाँ धंदा करती हैं। खिलावड़ियों को पुलिस की संकेतात्मक भाषा में रजिस्ट्री कहा जाता है।

मेव आदिवासियों में पंचायत का विशेष प्रभाव होता है। उसके निर्णय को सभी स्वीकार करते हैं जब सलेमी का पुत्र बाबूखों रामचंदर धोबी की लड़की की छेड़खानी करता है। उसके साथ जो व्यवहार करता है। उसकी शिकायत पंचायत में होती है। पंचायत का प्रमुख घोषणा करता है कि रामचंदर चाहता तो थाने-कचहरी जा सकता था। परंतु उसे पंचों पर विश्वास था। उन्हें पंचायत ने सुनाया कि आज गाँव की इस भरी पंचायत के सामने सलेमी अपने हाथों से अपने लड़के को पाँच जूते मारे। सलेमी भी अपने पुत्र से क्रोधित था इसलिए उसने एक झटके के साथ तड़ातड़ जूते मारते हुए उसे सुनाया कि—'कमीण, यासू तो तू पैदा होते ही मर जातो... तैने आज मेरी ढकी उघाड़ दी।'

रणेन्द्र के उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में आदिवासी असुर समाज का परिचय देते हुए कहा गया है कि असुर तीन भाग में बँटे हुए हैं—वीर असुर, अगरिया असुर और विरजिया असुर। वीर असुर से तात्पर्य बहादूरी से नहीं। बल्कि जंगल से है। इस समाज की विशेषता यह है कि यह संयुक्त परिवार में रहना अधिक पसंद करते हैं। यथा—लालचन दादा के परिवार में बड़े भाई आयो बाबा, छोटे भाई बालचन, रामचन उनकी बहुएँ, सबके दो-दो, तीन-तीन बच्चे, लालचन की दो बेटियाँ, बेटा थे। इसलिए असुर समाज में उनकी बड़ी इज्जत थी। असुर

आदिवासी अत्यंत परिश्रमी समुदाय है। उपन्यासकार के शब्दों में—“अपने देवता सिंगबोंगा की तरह असुर आदिम जाति भी कभी थकती नहीं। आग से उत्पन्न, कभी लोहा पिघलाने और पिघला लोहा खानेवाले लोग खुद भी लोहा थे। केवल मक्का या कन्दा खाकर लोग इतना खट सकते हैं। यह विश्वास नहीं होता। पाट की खेतीहर भूमि भी पानी के अभाव में बंजर पत्थर—सी दिखती। बरसात के पहले उसी पथरीली भूमि को फोड़ जोतकर तैयार करने में वे रात—दिन लगे रहते। खदान की मजदूरी भी कम देह—तोड़नेवाली नहीं थी।”<sup>26</sup>

सम्प्रति, लिविंग टुगेदर पध्दति को अपनाया जा रहा है। परंतु असुर आदिवासियों में यह प्रथा प्राचीन काल से प्रचलित रही है। उपन्यासकार के शब्दों में—“इस सुदूर वन प्रान्तर में लिविंग टुगेदर की बात बड़ी अटपटी लगी। लेकिन ललिता का कहना था कि आपकी ही दुनिया के लिए नयी बात थी और अभी—अभी फैशन में आयी थी। आदिवासी समाज में तो यह बहुत पुराने दिनों से मान्य है। विवाह में किसी भी तरह की कठिनाई आ रही हो तो लड़का—लड़की साथ—साथ रहना शुरू कर देते हैं।”<sup>27</sup>

आदिवासी समाज की समस्या तब और अधिक बढ़ जाती है। जब वन विभाग द्वारा इन आदिवासियों को अभयारण्य के नाम पर उनकी जमीन से बेदखल किया जाता है। वनविभाग ने खतियान में दर्ज सैंतीस वन गाँवों को खाली करने की नोटीस दी जाती है क्योंकि वहाँ भेड़ियों को बसाने की कोई योजना है और इन गाँवों में से बाईस गाँव असुरों के हैं बाकी उँराव, खेरवाल, असदान आदिवासियों के हैं। वास्तव में स्थिति यह है कि वनविभाग असुरों और आदिवासियों को अपने क्षेत्र में घूसपैठ मानता है। वह यह मानने के लिए तैयार ही नहीं कि ये आदिवासी सैकड़ों वर्षों से यहाँ रह रहे हैं।

रुमझुम असुर आदिवासियों के अधिकारों के लिए प्रयत्न करता है इसलिए वह प्रधानमंत्री महोदय के नाम एक पत्र लिखता है जिसमें आदिवासियों की स्थिति का अंकन करता है। वह लिखता है कि बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों ने हमारा नाश किया है। उनकी फैक्ट्री में बने लोहे के औजार बाजार में पहुँच चुके हैं। हमारे बनाये लोहे की औजारों की कोई पूछ नहीं है। हजारों-हजार सालों का हमारा हुनर खत्म हो रहा है। उसीके शब्दों में—“महोदय, शायद आपको पता हो कि हम असुर अब सिर्फ आठ-नौ हजार ही बचे हैं। हम बहुत डरे हुए हैं। हम खत्म नहीं होना चाहते। भेड़िया अभयारण्य से कीमती भेड़िये जरूर बच जायेंगे श्रीमान्। किन्तु हमारी जाति नष्ट हो जायेगी।”<sup>28</sup>

इस उपन्यास में असुर आदिवासियों का शोषण करनेवाले अनेक ग्लोबल गाँव के देवता हैं जो उद्योजक, व्यावसायिक, प्रशासक, राजनेता और पुलिस के ठेकेदार भी हैं। जंगल में बसे इन आदिवासियों को खदेड़कर वहाँ की नैसर्गिक साधन संपत्ति पर अपना अधिकार जतानेवाले वेदांग और टाटा जैसे उद्योजक हैं। इसीके साथ राजनेता और धर्म के रक्षक शिवदास बाबा भी हैं।

## नारी समाज —

समाज में नारी की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। सभ्य समाज की प्रतिवेदियाँ नारी केन्द्रित होती हैं। परंतु इसी नारी पर भयंकर रूप से अन्याय, अत्याचार होता है। आदिवासी महिला के शोषण को रेखांकित करते हुए डॉ. माया प्रसाद का अभिमत है कि—“एक बड़ी संख्या ऐसे आदिवासी महिलाओं की हैं जिनकी जीविका वनोपज पर है। जंगलों से

लकड़ियों काटकर, तेंदू के पत्ते तथा जड़ी बूटी बीनकर उनका व्यवसाय करने वाले इन स्त्रियों की स्थिति और भी भयावह है। वे केवल आर्थिक बदहाली का ही शिकार नहीं हैं, अपितु शोषण के उस जाल में फँसी हुई हैं जिनका एक सिरा जंगलात के अधिकारियों—कर्मचारियों के हाथ में है तो दूसरा बिचौलिए—व्यापारियों के मुठ्ठी में। अपने परिवार के लिए दो जून भात जुटाने की कोशिश में लगी इन श्रमजीवी स्त्रियों के आर्थिक, देहिक शोषण का सिलसिला सुरक्षा के तमाम सरकारी आश्वासनों के बावजूद आज भी जारी है।<sup>29</sup>

वीरेन्द्र जैन के 'पार' उपन्यास में जीरोन खेरा की स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार का वर्णन है। आदिवासियों के इलाके में डाकू धमाचौकड़ी मचाते हैं और एक—दो स्त्रियों को उठाकर ले जाती है। बेचारे आदिवासी उनका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। पहले तो एक महीने में स्त्रियाँ लौट आती थी। परंतु बाद में उनका लौटना बंद हो गया। वे डाकू के साथ रहने लगी। इस आदिवासी समाज में यौन संबंधों पर कोई पाबंदी नहीं है। उपन्यासकार के शब्दों में—“कहने को भले ही यहाँ कोई किसी की जनी है, कोई किसी की, लेकिन हकीकत में तो सब—सबकी जनी हैं। जितना जो जिसका है, उतना ही उसका भी है जिसका कोई दूसरा है।”<sup>30</sup>

इस समाज में नारी स्वतंत्र है। यदि औरत अपने पति को छोड़कर दूसरे के साथ रहना चाहती है तो उस पर कोई पाबंदी नहीं है। कचहरी में नोटरी के समक्ष वह प्रतिज्ञा पत्र दे सकती है कि वह पति को छोड़कर इस दूसरे व्यक्ति के साथ घर बसाने जा रही हैं इसी कारण कई बार उसका शोषण भी होता है। उपन्यासकार के शब्दों में—“इस इलाके में ऐसे ढेरों जमींदार, रईस, ताल्लुकेदार, असरदार अफसर और अन्य बड़े कारोबारी लोग हैं जो औरतें खरीदते हैं। उनके आदमी गाँव—देहात से, खेर—टपरे से औरतें उठा कर, फुसलाकर, हॉककर

लाते हैं। औरत को कचहरी में किसी एक आदमी के साथ पेश किया जाता है। उस औरत की और से कहलवाया जाता है कि वह इस आदमी के साथ अपना घर बसाना चाहती है। अपनी मर्जी से। किसी की जोर-जबरदस्ती से नहीं।<sup>31</sup> निर्मल साव जैसे कई साव हैं जो औरतों को खरीदकर अफसर, पुलिस और डाकू के सुपुर्द करते हैं। लड़कियाँ भी खरीदी-बेची जाती हैं। उनका लेन-देन चुपचाप होता है। उन्हें जोर जबरदस्ती और पतुरिया के लक्षण सिखाये जाते हैं और बाजार में बसाया जाता है।

नारी स्वतंत्रता के कारण इस समाज की नारियाँ स्वच्छंद हो गई हैं। अपने आर्थिक संकट से उबरने के लिए वे साव के साथ हँसी-मजाक करती हैं और अपने टपरा में ले जाकर लाड़ मनुहार करती हैं। साव आदिवासियों को धमकाता रहता है कि पॉच पीढ़ी पहले हमारे पुरखों ने जीरों की खेती कर जीरो गाँव बसाया था। इसका हमारे पास सबूत है—“सो मोंगे-मोंगे, सीधे-सीधे वह जगह खाली कर दो। तुमने खेरा न छोड़ा तो हम लाठी-बल्लम लाएँगे, पुलिस-पलटन लाएँगे, सिपाही-दरोगा लाएँगे। तब जान-माल का जो टोटा होगा उसकी जबाबदेही तुमरी होगी।”<sup>32</sup>

‘जहाँ बाँस फूलते हैं’ उपन्यास में आदिवासी नारी के स्वच्छंद व्यवहार को चित्रित किया गया है। काली का प्रेमी झा है। जब झा ने काली को अपने आलिंगन में लिया तो वह मर्दगंध से आक्रांत हो गई। झा सोचने लगा कि—“कोई चौबीस साल की लड़की भला कैसे एकदम क्वॉरी हो सकती है, वह भी लुशार्इयों के बेराक-टोक समाज में। फिर दोनों सोचते रहे कि जब औरत और मर्द का संबंध इतना स्वाभाविक होता है तब इस पर इतना पहरा क्यों होता है? और फिर इस सुख का अंत क्या होता है?”<sup>33</sup>

जोरमी वाई के साथ वाइरमा जाना सोचती है क्योंकि वहाँ स्त्रियों का जीवन सुखपूर्ण है। वे परदे में रहती है। सिर्फ घर का काम करती है। पुरुष उसको पालता है। तो यहाँ सुबह उठकर स्त्री को मीलो नीचे तुईपुर से पानी लाना पड़ता है। सुअर को चारा देना पड़ता है, दिनभर खेत में काम करना पड़ता है, लकड़ी के गठ्ठर ढोने पड़ते है, कपड़े धुलाने पड़ते है, अन्न उपजाना पड़ता है, भात बनाना पड़ता है और निठल्ला पति केवल दारु पीता है, मौज करता है और हर साल एक बच्चा पेट में भर देता है। कामी वाइरमा क्षेत्र में नारी के सुखद स्थिति के संबंध में अपनी सहेलियों से कहती है—“वहाँ बड़ा मजा है रे। वहाँ की लड़कियाँ बड़ी इज्जत से रहती है। मर्द पानी भरता है। अन्न जुटाता है, घर बनाता है। और औरत रानी की तरह रहती है। सिर्फ दो—तीन साल में एक बच्चा पैदा करती है। खाना बनाती है। कढ़ाई—बुनाई करती है।”<sup>34</sup>

‘अल्मा कबूतरी’ उपन्यास में नारी विषयक दृष्टि दृष्टिगत होती है। आदिवासी कबूतरा समाज की स्त्रियाँ साहसी होती हैं। वे पुरुषों के समान हथियार चलाने में सिद्धहस्त होती है। साहस के बल पर कदमबाई, भूरी और अल्मा जैसी नारियाँ जीवन में निराष न होकर संघर्ष करती हैं। चोरी और शराब का व्यवसाय होने के कारण कबूतरा समाज के मर्दों को अकसर पुलिस पकड़कर ले जाती है और इसकी सजा स्त्रियों को भुगतनी पड़ती है। कदमबाई अपने समाज के मुखिया सरमन को स्पष्ट शब्दों में कहती है कि—“सदा मारे जाने की चिंता सताती रहती है। कभी लड़ने की बात भी ता सोचो। पुलिस आई, सरक गए जंगल में। ठेकेदार आए, भाग गए खेतों में। औरतें पिटती रहीं। तुम हाहाकार सुनकर भी जान बचाए सिमटे रहे।”<sup>35</sup>

कदमबाई अपराधी समाज की होने के बावजूद अपने बेटे राणा को इस धंदे में नहीं डालना चाहती। अतः वह उसे पढ़ने के लिए बाहर भेज देती है। वह अपने बेटे को साहसी बनाना चाहती है। कदमबाई की बहू और राणा की पत्नी अल्मा भी साहसी है। वह समाज कल्याण मंत्री श्रीराम शास्त्री की प्रेरणा से राजनीति में कदम रखती है। वह पढ़ी-लिखी होने के कारण मंत्री जी के भाषण लिखने का कार्य करती है। जब मंत्रीजी की हत्या कर दी जाती है तब वह राजनीति में सक्रिय हो जाती है। उसने देखा, भोगा और अनुभव किया कि कबूतराओं पर डाकू और पुलिस निरंतर अत्याचार करते हैं। वह जानती है कि यदि अपने समाज को सशक्त बनना है तो राजनीति को हथियार बनाना पड़ेगा। इस प्रकार उपन्यास में नारी सक्षमीकरण परिलक्षित होता है। कबूतरा समाज में आर्थिक विवशता के कारण स्त्रियाँ धंदा करती हैं। केहरसिंह जैसे लोग स्त्रियों को खरीदते हैं और अमीरों को पेश करते हैं। दुर्जन अल्मा को यही कहता है कि—“अल्मा तू गिरवी धरी है, समझे रहना। भला। इसमें बुराई भी नहीं। हम कबूतराओं में तो यह चलन रहा है—जेवर—गहना—बासन और बेटी मुसीबत के समय काम आते हैं। अब तू मेरी खरीदी हुई...।”<sup>36</sup>

कज्जाओं के द्वारा नारी शोषण अधिक मात्रा में होता है। विशेष रूप से आदिवासी स्त्रियाँ उनका भक्ष होती हैं। संतोले की बहू अल्मा को श्रीराम शास्त्री के पास ले आती है। वह जानती है कि उसका भाग्य उसके माथे पर नहीं लिखा है। देह की उठान और कटावों पर लिखा है। यह वास्तविकता है कि नारी—नारी की शत्रू होती है। संतोले की बहू अल्मा को श्रीराम शास्त्री के पास न जाने के कारण उसके बिखरे बालों की लटें पकड़ती है, जोर से खींचती है और चार—पाँच थप्पड़ भी मार देती है। उपर से यह धौप देती है कि—बीहड़ में तेरी

जैसियों को ठीक किया है हमने।' नारी विविधरूपा हैं। वह अल्मा श्रीराम शास्त्री की अनेक रूपों में सेवा करती है। यथा—'परामर्श में मंत्री—सी, सेवा में दासी—सी, खिलाने—पिलाने में माता—सी और सेज पर रम्मा—सी।' वह साहसी है, बुद्धिमान है। इसलिए श्रीराम शास्त्री के अंत्येष्टि में स्वयं उपस्थित होकर उन्हें मुखाग्नि देती है।

अल्मा अपनी मेधावी शक्ति एवं राजनैतिक चतुरता से बबीना विधान सभा के लिए खड़ी होती है। निश्चित ही एक आदिवासी स्त्री का सक्षमीकरण इस प्रसंग में हुआ है। डॉ. सुनीता जाजोदिया लिखती है कि—“अपने नाम को सार्थक करने वाली अल्मा कबूतराओं की अंतहीन संघर्ष गाथा है और हिन्दी साहित्य के पन्ने पर जड़ा कबूतरा नारी के साहस और शौर्य का अनुपम नगीना है।”<sup>37</sup>

'जंगल जहाँ शुरु होता है' में यह यथार्थ है कि आदिवासी नारियों का शोषण डाकू भी करते हैं और पुलिस भी। बिसराम डाकू के साथ रहने लगा है। वह अच्छा लटैत था। अब वह उस के साथ बंदूक लेकर चलता है। परशुराम भी डाकू है। बिसराम का नया—नया गौना हुआ था। तब परशुराम ही उसकी पत्नी को उठाकर ले गया था। पुलिस भी जब तब आदिवासी की वस्ती में आकर औरतों का शोषण करती है। दुलारी की माई पर यह आरोप था कि उसने डाकूओं को खाना बनाकर भिजवाया था। बिसराम की बहू को पुलिस पकड़कर ले गई। पुलिस ने उसे यह कहा कि तुम्हारी जवान लड़की नहीं है। उसे भेज दो तो केस खल्लास कर देंगे। जब उसने यह कहा कि लड़की तो भगवान के पास चली गई तो पुलिस उसे मारने लगी। बिसराम की बहू यह त्रासदी बयान करती है कि यदि हम डाकूओं को खाना बनाकर नहीं भेजते तो वे हमें मारते हैं यदि खाना बनाकर देते हैं तो पुलिस वाले मारते हैं।



आदिवासी स्त्री मलारी को डाकुओं से मिली हुई है इस शक के कारण पुलिस उसे पकड़ती है। तब वह अपनी व्यथा इन शब्दों में व्यक्त करती हैं—“हाकिम! हमरा कसूर बस एतना है कि गरीब हैं, औरत जात हैं, जो ही आता है, डरा-धमका के जबरजस्ती करने को मगजूर (मजबूर) करता है।”<sup>38</sup> उसकी वेदना का पुलिस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अबला नारी का पुलिस शोषण करती है। अचानक सुदर्शन सिंह का चौड़स हाथ उसके मुंह पर पड़ा और वह खाट पर सीधे जा गिरी। प्रेमप्रकाश ने सीधे रायफल तानकर कहा बोल नहीं तो यह रायफल तेरे पेट में डाल देंगे।

समाज में नारी की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। सभ्य समाज की प्रतिवेदियाँ नारी केन्द्रित होती हैं। परंतु इसी नारी पर भयंकर रूप से अन्याय, अत्याचार होता है। रंगेनी भगतिन है। परंतु पुरुष वर्ग से आतंकित रहती है। इसी कारण अंधेरे से डरती है। वह जानती है कि डर मनुष्य के भीतर जीवन का समस्त सत्व हर लेता है। रंगेनी की त्रासदी यह है कि उसका पति ओकायना जो महावत था। वह हाथी के द्वारा ही मारा गया। पति के मृत्यु के पश्चात् वह चाहती तो दूसरा ब्याह कर सकती थी। परंतु मातृत्व के कारण वह अपने बेटे सोनारा को संभाले जीवन व्यतीत कर रही है। रंगेनी की नेक उमर थी। आगे लंबा जीवन था। गाँव के वृद्धों, पुजारी, मुखिया सबने मिलकर उसे सलाह दी कि—‘रंगेनी का मन हो तो किसी भी घर बैठ जाये क्योंकि अकेली औरत की जिंदगी जैसे बत्तीस दाँतों के बीच जीभ के समान है। चलते-फिरते कभी इधर-उधर हो जाय तो कट जाय।’

रंगेनी ब्याहता स्त्री के सुख को भोग चुकी है। इस रंगेनी ने पुरुषों के अत्याचार को भी सहा है। जब वह सब्जी बेचकर स्टेशन से लौट रही थी तब रेल पुलिस के दस्ते ने उसे

पकड़ लिया और उस पर अत्याचार किया गया—“अभी वह कपड़े सहेजकर बैठ भी नहीं पायी थी कि उसके पीछे घात लगाये भेड़िये अंधेरे में उस पर झपट पड़े थे। किसी हाथ ने रंगेनी का मुँह दबा लिया था। किन्हीं दूसरे हाथों ने बाँह उमेठकर सिर के उपर जकड़ लिये थे। कोई जूता उसके पैर को दबाये था। कोई जाँघ को चित गिराकर उसकी जाँघों पर सवार हो गया था... कोई भारी पेट उसके...।”<sup>39</sup>

उसे स्वयं याद को याद नहीं है कि उसके देह ने क्या-क्या झोला। वह किसी भी तरह यहाँ से निकल भागी। इस संबंध में उपन्यासकार व्यथित होकर लिखते हैं—“जो कुछ रंगेनी के साथ बीता था, वह किसी औरत के लिए बेहयाई की बात थी। अपनी मरजी से तो किसी के साथ सो लेती हैं आदिवासिनें। कोई खराब नहीं मानता इसे। बेचू तिवारी या साहू के साथ कहीं खेत-खलिहान में सो लेना तो बहादुरी मानी जाती है, पर कोई जोर-जबर से किसी को पटककर चढ़ बैठे, तो...? किसी आदिवासिन के मन के खिलाफ कोई उसकी जाँघ उधार दे...? छि...बेहयाई वाली बात...। किसी को बताने लायक तो क्या, कोई जान भी ले तो डूब मरने जोग बात...।”<sup>40</sup>

आदिवासी नारियों की विशेषता होती है कि वे अत्यंत परिश्रमी होती हैं। इसलिए अपने परिवार के आर्थिक अभाव को दूर करने के लिए परिश्रम करती हैं। यद्यपि उसके घर में ‘मरद’ नहीं हैं फिर भी उसने किसी के सामने हाथ नहीं पसारा। उसने घर के पिछवाड़े मुर्गियाँ पाल रखी हैं। हर मंगलवार को हप्तेभर के जमा अंडे हाट में बेचने जाती हैं। घर के पास हा साग-सब्जी भी लगाती हैं। प्रतिदिन मुँह अंधेरे में नदी से पानी लाकर क्यारियाँ पटाती हैं। यह उसकी आर्थिक सक्षमता का उदाहरण है।

आदिवासी क्षेत्र में जिंदगी के सारे संदर्भ औरतों के साथ संपृक्त है और उन्हीं का सबसे अधिक शोषण होता है। पुलिस, जंगल के ठेकेदार, वनाधिकारी, साहुकार और सभी उसकी आर्थिक स्थिति का लाभ उठाकर उसका शोषण करते हैं। आज स्थिति यह है कि आदिवासी महिलाओं को उनकी मजदूरी भी समय पर नहीं मिल पाती है। इसके लिए उन्हें बड़े लोगों के साथ यौन संबंध रखने पड़ते हैं। फलस्वरूप वे असाध्य रोगों से पीड़ित हो जाती हैं। इस यथार्थ को अमरेन्द्र किशोर ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—“वे खेतों में मेहनत करती हैं, फिर भी उन्हें उचित मजदूरी नहीं मिलती। क्यों नहीं मिलती, यह गाँव के सारे भू-पतियों को पता है। पूरी मजदूरी पाने के लिए इन मजदूरियों को रात में भी अलग से श्रम करना पड़ता है। मतलब मालिक की इच्छाओं को पूरा किए बगैर पूरी मजदूरी भला कैसे मिल सकती है। ऐसा नहीं है कि जब तक कोई महिला भू-स्वामी के खाट-खटिये पर नहीं बिछेगी, तब तक उन्हें पूरा पैसा नहीं मिलता।”<sup>41</sup>

आदिवासी समाज में कतिपय उत्सव इस प्रकार के हैं जिनमें स्त्री शक्ति का परिचय मिलता है। जैसे आदिवासी समाज में हर बारहवें वर्ष ‘जनीशिकार’ का कार्यक्रम लिया जाता है। यह दाग स्त्रियों की स्मृति का सुरक्षित रखने और अपनी महिलाओं को मरदाने सास के साथ मर्दा से जूझने के इतिहास को सुरक्षित रखने का त्यौहार है। इसमें स्त्रियाँ पुरुषों का वेष धारण कर शिकार पर निकलती हैं। उनके साथ कोई पुरुष नहीं होता है।

आदिवासी स्त्रियाँ अत्यंत कष्ट उठाती हैं और बच्चे को जन्म देती हैं। उनकी स्थिति पर चिंता व्यक्त करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है—“मात्र एक पतली धोती बाँधे औरतें पीठ पर बच्चे बाँधकर घर और बाहर दोनों के काम यूँ निपटाती हैं मानो वे इसी प्रकार मरने-खपने और

बच्चे जनने को ही बनी हों! हड्डियाँ चिंचोड़ते बच्चें!...संजीव को लगता है, किसी दिन इन छातियों में से दूध की बजाय रक्त न रिस पड़ें।”<sup>42</sup>

संजीव को आश्चर्य होता है कि पति-पुत्र की मंगल कामना के लिए स्त्रियाँ व्रत रखती हैं। तमाम प्रकार के कट्टर व्रत और उपवास स्त्रियों के मत्थे ही मढ़ दिये गये हैं यह शोषण ही है। संजीव सोचता है कि—“पुरुषसत्ता ने नारी के इर्द-गिर्द आदिकाल से ही ऐसे पाप-पुण्य, सौभाग्य और दुर्भाग्य के खौफनाक जाल बिछा रखे हैं। धर्म का हौवा खड़ा किया है। पाप-पुण्य के भय इतने मारक हैं कि शोषण के विरुद्ध मुँह खोलना तो दूर, सोचने से भी डरती हैं स्त्रियाँ। शोषण की पराकाष्ठा है यह।”<sup>43</sup>

आदिवासी बेड़नी समाज की नारी अत्यंत स्वच्छंद एवं अपराधी जीवन बिताती है। पिछले पन्ने की औरतों की नचनारी ने जब एक सुने अहाते में चोरी की और अपना चौर्य धन माँ को सौपा तो माँ बहुत खुश हुई। उस रात माँ ने उसे एक रोटी ज्यादा दी थी और देसी दारू की अपनी बोतल से एक छोटा-सा घूँट भी दिया था। बिलोटी की विवशता यह है कि उसका विवाह जिस आदमी से हुआ वह या तो फरार रहता है या जेल में रहता है। परिवार में सात-आठ बच्चे हैं ऐसी स्थिति में उसको परिवार की आर्थिक स्थिति के लिए गृहभेदन, चौर्यकर्म, ठगी आदि परंपरागत पेशा अपनाना पड़ता है। बिलोटी के विवाह के पूर्व उसे योग्य वर प्राप्त हो इसके लिए उसकी माँ ने उसकी माँ ने लड़के से पूछा कि उसने अब तक कितनी चोरियाँ की हैं और चोरी के अपराध में कितनी बार पकड़ा गया है। उसने उत्तर दिया छोटी-बड़ी मिलाकर 149 चोरियाँ की और पकड़ा गया सिर्फ नौ बार। बिलोटी के परिवार वालों को यह संख्या सम्मानजनक लगी और उसका विवाह हो गया।

नारी के विवश जीवन के संबंध में लेखिका के शब्द हैं—“पुरुषप्रधान समाज के सभी ताने-बाने पुरुषों की अभिलाषा के अनुरूप ही बुने गये हैं, जिसमें स्त्री की भूमिका अधिकारी की नहीं, अधीनस्थ की रही है। जब किसी पुरुष को अपना पौरुषत्व सिद्ध करना होता है तो वह स्त्री को माध्यम बनाता है। युद्ध चाहे कोई भी हो, कैसा भी हो, स्त्री की देह पर से होकर ही पूर्ण होता है।”<sup>44</sup>

पुरुषों की स्त्री शोषण की आदिम प्रवृत्ति आज भी वैसी ही है। रसूबाई नचनिया बेड़नी थी और नचनिया बेड़नी ही रहेगी। उसका पारंपारिक दायित्व अपने घर के पुरुषों का पेट पालना था। जिसे उसने आजीवन निभाया। बेड़िया समाज में पुत्रियाँ वेश्यावृत्ति के लिए विवश है। ये पुत्रियाँ संपूर्ण घरों एवं उँची जाँति के पुरुषों की संताने होने के कारण रंगरूप और चातुर्य से परिपूर्ण थी। इसलिए उन्होंने उच्चवर्ग को आर्थिक रूप से संपन्न पुरुषों को आकर्षित कर धन कमाना प्रारंभ किया।

संवेदनशील लेखिका आदिवासी बेड़नियों की स्थिति को देखने के पश्चात् यह अनुभव करती है कि—“औरत चाहे घर की हो या बाहर की। उसे पुरुषों द्वारा प्रथम दृष्टि में ही अपनी संपत्ति समझ लिया जाता है। उनसे यही अपेक्षा की जाती है कि वे वही करें जो पुरुष चाहते हैं। वे उतना ही सोचें जितना पुरुषों को पसंद है। उनका मान-सम्मान पुरुषों के मान-सम्मान में निहित है—यह धारणा सदियों से चली आ रही है।”<sup>45</sup>

ठाकुर और जमींदार जब तक चाहते तब तक किसी बेड़नी को अपने आश्रय में रखते हैं और जब उन्हें उस पर संदेह होता है तब वे उसे निकाल देते हैं। नचनारी ठाकुर की रखैल

थी परंतु उसे अंग्रेज अधिकारी से प्रेम हो गया तब ठाकुर ने उसे चेतावनी देकर उसे संदेश भेजा कि वह यह इलाका छोड़कर चली जाये अन्यथा उसे निर्वस्र करके घूमाया जायेगा और डकैतों के मिली-भगत के अपराध में पुलिस में भेज दिया जायेगा। इसलिए नचनारी कहती है कि—बेड़नियों के लिए ठाकुर हो या बनिया हो सब समान होते हैं क्योंकि उन्हें अपनी अकड़ और मर्दानगी दिखाने के लिए उनसे अच्छी औरतें कहाँ मिलेगी? वे अपनी बनाकर हमे रखते हैं परंतु वे खुद हमारे कभी नहीं होते। नारी की व्यथा को व्यक्त करते हुए शरद सिंह लिखती हैं—“वे औरतें, जिन्हें जीवित रहने के लिए अपनी शरीर को आमदनी का माध्यम बनाना पड़ा वे भी शरणागत के रूप में शोषित होने से नहीं बच पाईं। बेड़िया समुदाय की औरतें इसका जीता-जागता उदाहरण है। उन्हींने पाया कि उनके अपने समुदाय के पुरुष न तो उनका सहारा बन पाते हैं और न उन्हें सुरक्षित जीवन दे पाते हैं तो उन्हींने पूंजीपतियों की शरण में जाने का निश्चय किया।”<sup>46</sup>

बेड़नियों ने लोकनर्तकी के रूप में अपना स्थान निर्मित करना चाहा था। परंतु परिवार के आलसी पुरुषों के कारण उन्हें देह व्यापार करना पड़ा। जैसा कि लेखिका ने लिखा है—‘बेड़नियों ने अपना सामाजिक स्थान निर्धारित करने की दृष्टि से लोकनर्तकी का जीवन अपनाया; किंतु आलसी और सुस्त पुरुषों वाले इस समुदाय के भरण-पोषण के लिए मात्र नाच-गाकर पर्याप्त पैसा नहीं कमाया जा सकता था। पैसा कमाने का सबसे ‘शार्टकट’ अर्थात् छोटा रास्ता था—देह व्यापार, जो कि पीढ़ियों से इस समुदाय की औरतें करती आ रहीं थीं; अतः यह उनके लिए किसी भी अपराध-बोध से परे था।”<sup>47</sup> बेड़नियाँ सामान्यतः विवाहित औरतों के समान अपनी माँग में सिंदुर लगाती हैं ताकि उन्हें सभ्य स्त्री समझा जाय।

सभ्य समाज में जिसे आदिवासी कज्जा कहते हैं। उसमें दहेज के कारण न जाने कितनी स्त्रियों ने अपने प्राण दे दिये हैं। जबकि आदिवासी समाज में स्त्रियों को दहेज प्राप्त होता है। कमलाबुआ सुंदर लड़की की कीमत ज्यादा लेती है क्योंकि उसकी जो लड़की होगी वह भी सुंदर होगी। वैद्यजी को लगता है कि यह दहेज लेना लड़की को खरीदने जैसा हो गया। कभी वह वैद्यजी को कहती है कि इज्जतदार लोगों में भी लड़का खरीदा जाता है। रुक्मिणी धंदा करती है और उसका स्पष्ट मत है कि—“ग्राहक को ग्राहक ही समझना चाहिए। मैं नहीं पालती इस दामाद—जमाई का टंटा। जिसे शौक है पाले। अरे, यह क्या बात हुई कि एक बार मत्था ढकाई क्या करी, उमर भर उसकी गुलामी हो गई। जब गुलामी ही करनी थी, तो जरूरी था बुआ बनना...ब्याह रचाके भाभी ना बनती...और बैदजी, अगर मत्था ढकाई की उसने रकम दी है, तो बदले में मैंने भी उसे अपनी आबरू उसके हवाले की है। किसी ने किसी पर एहसान नहीं किया है।”<sup>48</sup> वेश्याएँ मत्था ढकाई के लिए ज्यादा से ज्यादा धन प्राप्त करती हैं।

पुलिस इस समाज की स्त्रियों पर वेष्या व्यवसाय के कारण अत्याचार करती है। थानेदार केहरसिंह बचनों को स्पष्ट शब्दों में कहता है कि अगर उसने सही समय पर थाने में हाजिरी नहीं दी तो उसे पूरे छह महीने जेल में सड़ना पड़ेगा और उपर से दो सौ रुपये जुर्माना भरना पड़ेगा। पुलिस इन वेश्याओं पर तब छापा मारना चाहती है जब उनके पास ग्राहक हो क्योंकि उनसे भी पैसा वसूल किया जा सके। पुलिस और न्यायालय आते—जाते रहने से यह स्त्रियाँ भी दबंग हो जाती हैं। कस्तूरी तो चुनौती भरे शब्दों में कहती है—“थाना—कचैड़ी आना हमारा रोज का काम है...जमानत का डर मत दिखाओ हमें। कंजरो को जेल—हवालात से नहीं लगता है डर...कितने दिन रखोगे हवालात में—एक दिन, दो दिन!”<sup>49</sup> ये वेश्याएँ कायदे—कानून

तक जानती है। इसलिए वह हवालदार से कहती है कि उन्हें हवालात में बंद करने का अधिकार थानेदार को नहीं डी. एस. पी. को होता है। ज्यादा से ज्यादा उन्हें एक दो दिन हवालात में रखा जा सकता है। इसलिए उन्हें कायदे कानून समझने की जरूरत नहीं है। यह हवालदार अपने साहब के लिए खिलावड़ी की माँग करता है तो बचनो स्पष्ट शब्दों में कहती है कि खिलावड़ी खैरात में नहीं बँटती है। गाँठ ढीली करने पड़ेगी। इससे स्पष्ट है कि खिलावड़ियों में भी अपना एक उसूल है।

कस्तूरी चाहती है कि बचना को आधे बाँटे पर दे दिया जाय। महावार जितना माँगेगी दूँगी। यह सुनकर डी. एस. पी. साहब को आश्चर्य हुआ कि उन्होंने खेत खलिहान बँटाई पर देखे थे। अब ये पहली बार किसी स्त्री को बँटाई के लेन—देन पर देख रहे हैं। इससे यही स्पष्ट होता है कि कुजर समाज में स्त्री एक पणन की वस्तु बन गई है।

वेश्या समाज में किसी कमसिन लड़की का देहिक शोषण किया जाता है। रंभा अभी किशोरी है और उसे एक अधेड़ व्यक्ति को मत्था ढकाई के लिए सौंप दिया जाता है। इस प्रसंग से वैद्यजी बहुत दुःखी होते हैं। वे देखते हैं कि अभी—अभी केशोर्य की दहलीज को लाँघती यह अल्हड़ गिलहरी और वह हट्टा—कट्टा कुलंग। कमलबुआ ने यह सौदा सोच—समझकर किया था क्योंकि यह व्यक्ति मत्था ढकाई सारा खर्चा जैसे खिलावड़ी के कपड़े—लत्ते, शराब, मांसाहार का खर्च कर रहा था और मत्था ढकाई के लिए अलग रक्कम निश्चित हुई थी। रंभा उसकी माँ अंगूरी के लिए नोट छापने की मशीन है क्योंकि वह रोज 1000 रुपये तो कमाती है। इससे यही सिद्ध होता है कि स्त्री की शत्रू स्त्री बनकर उसीका शोषण करती है। इसी रंभा को रुक्मिणी बँटाई पर माँगती है। इसके लिए बँटाई का सौदा पैंतीस—पैंसठ पर होता है और रुक्मिणी



ब्लाउज के अंदर छिपी पाँच सौ की एक छोटी-सी गड़्डी निकालती है और अंगूरी को देती है कि बयाने के रूप में यह रकम रख ले पूरे दस हैं, चाहे गिन ले। निश्चित ही नारी की विवशता के कारण वह पशु के समान खरीदी-बेची जाती है।

रुक्मिणी अपने स्वयं के अस्तित्व को 'रेत' मानती है—'बैदजी, यह रुक्मिणी तो ऐसी रेत है जिसे जैसी चाहे हवा अपने साथ उड़ा ले जाए...जैसा चाहे पानी बहा ले जाए और तो और जिसके जी में आए अपनी मुट्ठी में कैद कर ले जाए। क्या है इसका अपना, कुछ भी तो नहीं। भला, रेत का भी अपना कोई वजूद होता है?'<sup>50</sup> निरंतर वेश्या व्यवसाय करते हुए रुक्मिणी ताकतवर हो गई हैं। उसकी बातें भी सीधा प्रहार करती है। वह अपनी मर्जी की मालिक है। उसमें अहं भावना हैं तभी तो बेझिझक कहती है—'मरजी से तो बैदजी इस रुक्मिणी को मर्द तो क्या जिनावर भी रौंद जाए...पर बिना मरजी के, आँख तो उठा जाए कोई...माना गुरु की साँ बैदजी, खंते से आँखे निकालके हाथ पर रख दूँगी। आखिर इस कंजरी की भी अपनी कोई आबरू है।'<sup>51</sup>

कमला बुआ अपने व्यवसाय को हीन नहीं समझती क्योंकि यह भी एक मेहनत का काम है। उसीके शब्दों में—'जैसे ये इज्जतदार अपनी मेहनत बेचते हैं न, वैसे ही हम अपनी देह बेचते हैं। हमारे लिए तो हमारी यह देह ही हमारी मेहनत है। हमारे लिए तो यह दूसरे कामों की तरह आम काम है।'<sup>52</sup> और यदि विश्वास न हो कि यह मेहनत का काम है तो जाकर अपनी जोरू से पूछना कितनी मेहनत लगती है इस काम में।

आज नारी स्वच्छंद होकर जीवन जीना चाहती है। समाजसेविका सावित्री मल्होत्रा जब रुक्मिणी को राजनेता मुरली के साथ शराब पीने में साथ देने के लिए कहती है तो वह नकारती है। तब रुक्मिणी स्वयं साथ देने के लिए तत्पर हो जाती है। यह रुक्मिणी मल्होत्रा समाजसेविका है। वह चाहती है कि वेश्याएँ अपना व्यवसाय छोड़कर घरेलू छोटा-मोटा उत्पादन करें। इसलिए वह जनजाति महिला उध्दार सभा की स्थापना कर रुक्मिणी को इसका प्रमुख नियुक्त करती है। इस संस्था के माध्यम से वेश्याएँ अपना व्यवसाय छोड़कर पापड़-बड़ियाँ बना सकती है। इसके लिए उन्हें तनखा मिलेगी। परंतु अधिकतर वेश्याएँ इसके लिए तैयार नहीं होती है। यही रुक्मिणी सिध्द करती है कि यदि स्त्रियों को अवसर प्राप्त हो तो वे उनमें निहित अपार उर्जा से अपने व्यक्तित्व को सिध्द कर सकती है। रुक्मिणी भी 'जनजाति महिला उध्दार सभा' संस्था के प्रमुख रूप से धीरे-धीरे राजनीति में सक्रिय होती है। राजनीति में उठापटक करती हुई विधायक बनने के पश्चात् राजकीय मंत्री के रूप में शपथ लेती है। इससे यही सिद्ध होता है कि एक कंजर आदिवासी स्त्री अपनी क्षमता और उर्जा को सिद्ध करती हुई ऊँचाईयों तक पहुँच सकती है। इस प्रकार उपन्यास में नारी सक्षमीकरण को अभिव्यक्त किया है।

रणेन्द्र के उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में नारी समाज के परिश्रम का उल्लेख किया गया है। असुर आदिवासी स्त्रियाँ भोर में जग जाती है क्योंकि यह उनका धान कुटने का समय होता है। इसके पश्चात् साफ-सफाई के बड़े बर्तन लेकर वे पहाड़ी के ढलान पर एखाद मिल नीचे झरने पर जाती है। जलावन का इंतजाम करती है। घर के गाय-गोरुओं के लिए चारे का प्रबंध और फिर परिवार के लिए रसोई में भात रँधने का कार्य होता है। इसके पश्चात् खेतों में काम करती है। सभी आदिवासी स्त्रियाँ हँसते-गाते, खिलखिलाते घर के काम करती है।

महिलाएँ इस समाज में जनानी नहीं सियानी कहलाती है। जनानी शब्द कहीं न कहीं केवल जनन, जन्म देने की प्रक्रिया तक उन्हें संकुचित करता है। जबकि सयानी शब्द उनकी विशेष समझदारी, सयानेपन की और संकेत करता है।

असुर आदिवासी स्त्रियाँ देहिक रूप से शोषित होती रही। कसाईयों के हाथों में पड़ी बेटियाँ बार-बार गर्भ गिराने के कारण असमय वृद्धा हो जाती थी।

आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में लगभग सभी उपन्यासकारों ने आदिवासी परिवार में व्याप्त अज्ञान का, निरक्षरता, अंधविश्वास, पिछड़ापन, कुप्रथाओं का सोदाहरण विवेचन किया है। ये उपन्यासकार आदिवासियों के प्रति संवेदनशील हैं, प्रतिबद्ध हैं और उनकी यही प्रतिबद्धता उनके आदिवासियों के संदर्भ में व्यक्त सामाजिकता से स्पष्ट होती है। आदिवासी समाज में सबसे दुखी है आदिवासी नारी। आदिवासी स्त्रियाँ अथक परिश्रम करती हैं। वे ही परिवार की आर्थिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए समर्पित हैं। इसके लिए भले ही उन्हें विवश होकर देह व्यापार करना पड़े।

.....

—संदर्भ ग्रंथ—

- 1) पार— वीरेन्द्र जैन, पृ. 51
- 2) जंगल जहाँ शुरु होता है— संजीव, पृ. 156
- 3) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 61

- 4) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 113
- 5) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 124
- 6) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 126—27
- 7) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 242
- 8) आलोचना—जुलाई—सितंबर—2001, पृ. 87
- 9) जहाँ बाँस फूलते हैं— श्रीप्रकाश मिश्र, पृ. 70
- 10) जहाँ बाँस फूलते हैं— श्रीप्रकाश मिश्र, पृ. 72
- 11) अल्मा कबूतरी— आमुख से
- 12) अल्मा कबूतरी— मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 132
- 13) अल्मा कबूतरी— मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 99
- 14) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 42
- 15) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 80
- 16) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 107

- 17) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 194
- 18) जंगल—जंगल लूट मची हैं— अमरेंद्र किशोर, पृ. 88
- 19) पिछले पन्ने की औरतें— शरद सिंह, पृ. 67
- 20) आदिवासी केन्द्रित हिन्दी उपन्यास— सं. डॉ. उषा राणावत,  
डॉ. सतीश पाण्डेय, डॉ. शीतला दुबे, पृ. 83
- 21) काला पादरी—तेजिन्दर, पृ. 46
- 22) काला पादरी—तेजिन्दर, पृ. 70
- 23) काला पादरी—तेजिन्दर, पृ. 87
- 24) काला पादरी—तेजिन्दर, पृ. 92
- 25) आदिवासी केन्द्रित हिन्दी उपन्यास— सं. डॉ. उषा राणावत,  
डॉ. सतीश पाण्डेय, डॉ. शीतला दुबे, पृ. 136
- 26) ग्लोबल गाँव के देवता— रणेन्द्र, पृ. 28
- 27) ग्लोबल गाँव के देवता— रणेन्द्र, पृ. 76
- 28) ग्लोबल गाँव के देवता— रणेन्द्र, पृ. 84

29) भारतीय आदिवासी— डॉ. लक्ष्मण प्रसाद सिन्हा, पृ. 90

30) पार— वीरेन्द्र जैन, पृ. 17

31) पार— वीरेन्द्र जैन, पृ. 64

32) पार— वीरेन्द्र जैन, पृ. 93

33) जहाँ बाँस फूलते हैं— श्रीप्रकाश मिश्र, पृ. 36

34) जहाँ बाँस फूलते हैं— श्रीप्रकाश मिश्र, पृ. 116

35) अल्मा कबूतरी— मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 210.11

36) अल्मा कबूतरी— मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 244

37) आदिवासी साहित्य विविध आयाम— सं. रमेश कुरे,

डॉ. मालती शिंदे, प्राचार्य प्रवीण शिंदे पृ. 129

38) जंगल जहाँ शुरु होता है— संजीव, पृ. 196

39) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 31

40) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 32

41) जंगल-जंगल लूट मची है- अमरेन्द्र किशोर, पृ. 80

42) पठार पर कोहरा- राकेश कुमार सिंह, पृ. 138

43) पठार पर कोहरा- राकेश कुमार सिंह, पृ. 229

44) पिछले पन्ने की औरतें- शरद सिंह, पृ. 47

45) पिछले पन्ने की औरतें- शरद सिंह, पृ. 91

46) पिछले पन्ने की औरतें- शरद सिंह, पृ. 139

47) पिछले पन्ने की औरतें- शरद सिंह, पृ. 140

48) रेत- भगवानदास मोरवाल, पृ. 33

49) रेत-भगवानदास मोरवाल, पृ. 55

50) रेत-भगवानदास मोरवाल, पृ. 111

51) रेत- भगवानदास मोरवाल, पृ. 112

52) रेत- भगवानदास मोरवाल, पृ. 144

## पंचम अध्याय

'आदिवासी केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में  
धार्मिक विमर्श'



## पंचम अध्याय

### आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में चित्रित धार्मिक आयाम

भारत धर्मप्राय देश है, वहाँ धर्म का स्थान मूर्धन्य है। उनकी धार्मिकता संकुचित नहीं होती। यहाँ उच्च वर्ग से लेकर निम्नवर्ग तक धार्मिक आस्थाओं से संपृक्त रहता है। आदिवासी भी धर्म के प्रति श्रद्धा रखते हैं। धर्म मनुष्य को आचार-विचार समझाता है। मनुष्य को अनुशासित कर उसके आचरण को शुद्ध बनाता है। धर्म मनुष्य के आत्मविकास के लिए है। परंतु अधिकांश आदिवासी अंधश्रद्धा और अंधविश्वास को मानते हैं। जिसके कारण उनका आर्थिक नुकसान भी होता है। आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में चित्रित धार्मिक आयाम को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

‘पार’ उपन्यास में वीरेन्द्र जैन ने यह यथार्थ वर्णित किया है कि साहुकार अपने स्वार्थ के लिए दान-पुण्य करते हैं। जब लड़ैई के कैलाश महाराज ने जीरोन में मंदिर बनाना प्रारंभ किया तो घूरे साव ने मदद की। पाप छिपाने को उतावला घूरे साव पुण्य की आड़ ले रहा है। गुनिया जानता है कि घूरे साव के मन में यह तमन्ना क्यों जगी है।

‘काला पहाड़’ में हिंदू और मुस्लिमों की एकता वर्णित है। मनीराम का पुत्रप्राप्ति होने पर मजार पर चादर चढ़ाने का उल्लेख हुआ है—“जुम्मेरात के दिन दादाखानू और पचवीर पर गलेप चढ़ाने की सारी तैयारी हो गई है। होती भी क्यों नहीं, मनीराम और रुमाली ने पता नहीं कब से बोला हुआ है कि अगर उनके यहाँ लड़का हुआ तो वे दादाखानू और पचवीर पर गलेप चढ़ाएँगे।”<sup>1</sup>

‘काला पहाड़’ उपन्यास में धार्मिक संकुचित भावना के कारण हिंदू—मुस्लिमों में व्याप्त सांप्रदायिक भावना का उल्लेख हुआ है। 30 नवंबर और 6 दिसंबर को हुए अयोध्याकांड के कारण हिंदू—मुस्लिमों के बीच विश्वास समाप्त हो गया। उनमें आपस में लेन—देन, त्यौहार समाप्त हो गये। जहाँ मंदिर मस्जिद हैं। वहाँ यह बदले की भावना व्याप्त हो गई। धार्मिक और सांस्कृतिक धरोहर एवं विरासत नष्ट की जाने लगी।

‘अल्मा कबूतरी’ उपन्यास में कबूतरा जाति का ग्रामदेवता बीर देवता माना गया है। उसकी स्थापना बेल के पवित्र पेड़ की छँव में होती है। लिपी हुई चबूतरे पर बेल के पत्ते, फांग का पत्ता, गुड़, बकरे का खून चढ़ाया जाता है। कदमबाई के शब्दों में—‘बीर देवता बालकों की अरज जल्दी सुन लेते हैं। जब कोई व्यक्ति बीमार पड़ जाता है तब बीर देवता की मूर्ति के सामने मंत्र पढ़े जाते हैं, पशुबलि दी जाती है।’ बीरदेवता के अलावा यह समाज भूत—प्रेत में विश्वास रखता है।

अंधविश्वास इनकी धार्मिकता का एक अंग है। धर्म परिवर्तन की और संकेत करते हुए रामसिंह कहता है—“फिरंग लोग मुसलमान नहीं बनाते थे, पीठ पर हाथ फेरकर गिरजाघर ले जाते। हिंदू लोग मुँह फेर चुके थे तो ये घुमंतू कहाँ सहारा लेते? गोरे साहब छौटी चीज को बड़ी नजर से देखनेवाले...कहते—तुम्हारा भगवान तुम्हें दगा दे गया, ईशु पर भरोसा करो। रूपसिंह, विराटसिंह और प्रतापसिंह जैसे नामें ने तुम्हें गीदड़ की तरह भगाया है— जॉन सैमसन बनो। सीता—सावित्री और पद्मिनी बनकर क्या मिला? मेरी, मारिया और ऐनी बनकर पीने को पानी, पहनने के लिए कपड़े और खाने के लिए अन्न मिलेगा।”<sup>2</sup> इनमें धार्मिक अंधविश्वास व्याप्त है।

भारत धार्मिक देश है इसलिए यहाँ कोई वस्तु, कोई संपत्ति खरीदने पर पूजा पाठ किया जाता है। कोई कार्य करने से पूर्व देवी-देवताओं, पीर की मन्नोती माँगी जाती है। सावित्री ने रुक्मिणी को राजनीति में प्रवेश दिलाते समय मजार पर जाना उचित समझा। मजार पर जाकर उसने सिर पर पल्लू डालकर आँखें मूँदकर गोरा पीर से मन्नत माँगी। रुक्मिणी भी अपना नामांकन पत्र भरने के पूर्व मजार पर जाती है। वहाँ आदिम से आशिष प्राप्त करती है। वे सभी आशिष देते हैं कि पीर बाबा उसकी मुराद जरूर पूरा करेंगे। जुम्मेरात के दिन चादर चढ़ा दें। गोरा पीर के यहाँ जो आता है वह खाली हाथ नहीं जाता है। इसी प्रकार अपने कुल देवी-देवता माना गुरु और माँ नगीन्या का आशीर्वाद लेना नहीं भूलती।

आदिवासियों के अज्ञान का लाभ उठाकर उन्हें अंधविश्वास की ओर धकेला जा रहा है। जैसा कि अमरेन्द्र किशोर ने लिखा है—“आदिवासी समाज में ‘ओझा’ का विशेष स्थान होता है। वह आम लोगों से नहीं बल्कि लोगों को भूत-प्रेत से मुक्ति दिलवाता है। इसके ऐवज में उनसे वह ढेर सारे रुपए, दूधारु पशु, मुर्गे और दारु लेता है। वह पूरे समाज का गुरु होता है। प्रेतात्माओं को अपने वश में रखने का वह दावे भी करता है। इस दावे में सच्चाई क्या बता पाना मुश्किल है।”<sup>3</sup>

‘जंगल जहाँ शुरु होता है’ में संजीव ने यह वास्तविकता वर्णित की है कि आदिवासियों के धर्म में अंधविश्वास को अधिक स्थान होता है। उनके अनुसार बहुत सिद्ध ओझा है कामदगिरि। उसे चूनर, मुर्गे और गाँजे का चढ़ावा चढ़ाया जाता है—“नीम के चौरे के तले लोहबान सुलग रहा है। अड़हुल के फूल सजाकर रखे हुए हैं। ओझा मंत्र पढ़ रहे हैं पढ़ते-पढ़ते स्वर कभी तेज हो जाता है, कभी धीमा-छू काली कलकत्ते वाली, बनदेवी, बनसप्ती देवी, नर

देवी, माई के थान की माता, शीतला भवानी, रहसू भगत, सोमेश्वर देव अतना बेर से आइ के ... फूली लवंग से गोदकर दूसरी फूली लवंग उठाता है, उठाकर गिराता है। पचरा गाते समय स्वर बदल जाता है— नीमिया की डारी मैया डारे ली हिंडोलवा, कि झूलि झूलि ना...। पचरा सुनते ही बिसराम बहू समेत कई गाँव की औरतें खेलने (अभुवाने) लगती हैं। नीम की चँवर से झाड़ता है ओझा।”<sup>4</sup>

थारुओं में यह भी अंधविश्वास है कि हिरन का मांस नहीं खाना चाहिए इससे हैजा होता है। डाकुओं में ईश्वर के प्रति भक्तिभावना होती है। परेमा डाकू है। वह झरने के पानी से स्नान करता है। गेरुआ धोती पहनता है, मृगचर्म बिछाता है, दोनों हाथों से राइफल को बायनेट के सहारे उल्टे गाड़ देता है और फिर फूल, अक्षत, रोली, धूप, दीप, शंख और रुद्राक्ष की माला निकालकर पूजा करता है। गायत्री मंत्र भी पढ़ता है। सामान्यतः भारत में डाकुओं के द्वारा पूजा—पाठ और गरीबों की सहायता के किस्से प्रचलित रहे हैं। इस क्षेत्र में ‘लखरॉव’ नामक पर्व मनाया जाता है। किसी महीने की कृष्ण चतुर्दशी के पश्चात् अनुष्ठान प्रारंभ किया जाता है। एक लाख पुष्प या एक लाख बेलपत्र ऊँम नमः शिवाय’ के साथ शिवजी को अर्पित किये जाते हैं। मदनपुर माई के स्थान पर अष्टयाम कीर्तन की आठवीं रात को ‘लखरॉव’ की पूर्णाहुति होती है।

राकेश कुमार सिंह के ‘पठार पर कोहरा’ में आदिवासियों के धार्मिक विधि—विधान का निरूपण किया गया है। यह आदिवासी अशिक्षित होने के कारण धार्मिक आचरण में अंधविश्वासों को अधिक महत्त्व देते हैं। पराशक्तियों पर उनका विश्वास होता है। रोग शोक होने पर ये ओझाओं के पास जाते हैं—“साहू को पता है, गजलीठोरी जानता है...आसपास के दस गाँवों को मालूम है, भगतिन है रंगेनी। भगतिन याने स्त्री ओझा! पराशक्तियों की ज्ञाता! भूत, प्रेत, डाकिन,

पिशाचिन, चुड़ैल, किच्चिन आदि से जिसका संवाद रहता हो। अगमजानी अर्थात् मनुष्य के भीतर छुपे—दबे रोग—शोक, बुरी आत्माओं की छाया पड़ने के कारण होनेवाली हारी—बीमारी तथा मन की बातों को पढ़ लेनेवाला!”<sup>5</sup>

आदिवासी समाज में कई प्रकार के उत्सव, पर्व मनाये जाते हैं। धार्मिक अनुष्ठान को आर्थिक अभाव होने के बावजूद पूर्ण किया जाता है। संजीव देखते हैं कि तालाब के किनारे एक आयोजन चल रहा है जिसमें जनसमूह एकत्रित हैं। उसे ज्ञात होता है कि यह उत्तरकांड नामक विधान है, यह उत्सव है। ढोल—मांदल की तरंगित थापों के बीच टूटते स्वर में गायन किया जाता है। हवा में उत्तेजना फैलती है। दहकते अग्निकुंड के इर्द—गिर्द वाद्ययंत्रों की धुन पर आदिवासी थिरकते हैं, झूमते हैं, मस्त होकर नाचते हैं। विक्षिप्त होकर नाचते—चीखते आदिवासियों को देखकर संजीव ने अनुभव किया कि मानो उन पर कोई अदृश्य शक्ति सवार हो गई है।

आदिवासी क्षेत्रों में सिद्ध साधुओं का खूब चलन है। इसलिए बेचू तिवारी ने उनके रहने के लिए खेत पर फूस की मड़िया बनवा रखी है। यहीं पर 30—33 वर्ष का एक अर्धेड़ आदमी धुनी जमाता है। वह 'बम भोले नाथ', 'अलख निरंजन', जाग मच्छिंदर' के नारे लगाता है। वह आदिवासी नहीं है। ऐसे साधु अपने शिष्यों के माध्यम से अपना स्वयं का प्रचार करवाते हैं। जैसे बेचू तिवारी कहता है कि बाबा सिद्ध पुरुष हैं। वह बड़े सिद्ध आत्मा हैं। ऐसे सिद्ध पुरुषों के पास अन्नपूर्णा होती है जो इनकी सभी इच्छाएँ पूर्ण करती है। परंतु हकीकत यह है कि यही बाबा स्त्रियों का देहिक शोषण करते हैं। रंगेनी को इस बाबा ने पेढ़ा दिया और वह होश—हवास खो बैठी। थोड़ी देर बाद होश में आई तो उसे अपने देह का भान हुआ। लाज से जमीन पर रंगेनी

बैठ गई। जब रंगेनी ने इस बाबा की चालाकियों को उजागर किया तो बेचू तिवारी उसी पर गरजने लगा और समाज ने रंगेनी को समाज बहिष्कृत कर दिया।

भारत में आदिवासियों की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय होने के कारण वे धर्मांतरण कर रहे हैं। जिस पर देश में चर्चा-परिचर्चा होती रही है। कनासफॉग के लगभग सारा मुंडा ख्रिश्चन बन गये हैं। गले में माला पहनते हैं, चर्च भी जाते हैं। वे अपनी देवता सिंगबोंगा को विस्मृत करते जा रहे हैं जो उनका सबसे बड़ा देवता था।

आदिवासी समाज की विशेषता यह है कि इनके घरों में अंधविश्वास बुरी तरह व्याप्त है। भगत और भगतिन इनके आराध्य बन गये हैं। लेखक के शब्दों में—“भगतिन माने ओझाइन। भूतखेलौनी। जैसे मर्द बेगा होता है, वैसे ही औरत भगतिन...! भूत, प्रेत, बिसाहा, बिसाहिन—सबका मर्म जानती है रंगेनी। चैत नवमी को तो उस पर नकटीदाई की सवारी भी आती है।”<sup>6</sup>

चर्च के फादर ब्रूनो संजीव को समझाते हैं कि धर्म क्या हैं? उन्हीं के शब्दों में—“यही तो धर्म का मर्म है संजीव! दूसरों की आस्थाओं का आदर। दूसरों के विश्वासों का सम्मान और अपने विश्वासों के प्रति गहरी आस्था। और क्या है धर्म...? बाकी ये मूर्तियाँ, चित्र, मोमबत्तियाँ, धुएँ, पूजा या प्रेयर...सारे कर्मकांड तो मन को धर्म की ओर प्रेरित करने के उपादान भर हैं। ये खुद में कोई धर्म थोड़े ही न हैं।”<sup>7</sup> आगे वे स्पष्ट करते हैं कि धर्म मनुष्य के भीतर निवास करता है। ईश्वर का स्थान अंतस में है। जो धर्म जितना उदार रहा उसके अनुयायी भी उतने ही अधिक रहे। आज धर्म में कट्टरता आ रही है। इस पर भाष्य करते हुए फादर यह यथार्थ उद्घाटित करते हैं कि—“कट्टरता और असहिष्णुता को सभ्यता के संघर्ष का जामा पहनाना झूठ

है। धर्म के पीछे लाठी लेकर पड़ना बुरा है। धर्म के मर्म को समझे बगैर उसका जाप धर्मान्धता है संजीव!”<sup>8</sup>

सामान्यतः ख्रिश्चन धर्म पर यह आरोप किया जाता है कि वे आदिवासियों को जोर जबरदस्ती अपने धर्म में खींचना चाहते हैं। इस संदर्भ में फादर का मत है कि—“हम तो बस जनजातियों को उनके अधिकारों के प्रति जागरुक करते हैं। उनकी दमित-सुप्त चेतना को जाग्रत करना चाहते हैं। उन्हें बताते हैं कि प्रभु की बनायी इस दुनिया में सभी मनुष्य समान हैं।.. .हॉ, यह भी सच है कि यदि कोई आदिवासी श्रद्धापूर्वक ईसाइयत को अपनाने की इच्छा प्रकट करता है तो उसे बपतिस्मा जरूर देते हैं हम...निःसंकोच।”<sup>9</sup>

संजीव देखते हैं कि अंधविश्वासी आदिवासी स्त्रियाँ भगतिन रंगेनी से मिलने रात के अंधेरे में आती हैं। क्योंकि “झाड़-फूँक, जादू-टोने, बिसाहा-बिसाही या भूत-प्रेत से जुड़े मामले रात के अंधेरे में ही निपटाएँ जाते हैं। चैत का महीना ओझा, गुनिया या बैगा लोगों का मौसम होता है। चैत नवमी की रात को नकटी दाई के टीले पर अनगिनत कुक्कुटों की बलि चढ़ती है।”<sup>10</sup>

आदिवासियों के धर्म में यद्यपि अंधविश्वास व्याप्त हो चुका है। फिर भी कई ऐसे पर्व हैं जो इनकी उदात्त धार्मिक एवं सांस्कृतिक भावना के प्रतीक हैं। इस समाज में खरजितिया का पर्व मनाया जाता है। माताओं के लिए इस पर्व की बड़ी महत्ता है। पुत्र के लंबे जीवन, सुख स्वास्थ्य और समृद्धि के हेतु यह पर्व मनाया जाता है। मूल रूप से यह पर्व सादान और गैरआदिवासी समाज का है। परंतु लंबे समय से चलती आ रही सामाजिक, आर्थिक सहयात्रा ने जन-जातियों

और साधारणों के बीच एक सामासिक संस्कृति निर्मित एवं विकसित की है। इसलिए करमा, सागुल, आरकांड, तीज, हरितालिका, करद्वितिया जैसे पर्व सभी प्रकार के आदिवासियों में मनाये जाते हैं।

तेजिन्दर के उपन्यास 'काला पादरी' में आदिवासी उराँव समाज के धार्मिक आयाम को उजागर किया गया है। ये उराँव आदिवासी धार्मिक दृष्टि से दो स्थितियों के बीच फँसे हुए हैं। एक ओर हिंदू धर्म है तो दूसरी ओर ईसाई धर्म है। उपन्यास का नायक आदित्यपाल और जेम्स खाखा समाचार पत्र में यह खबर पढ़ते हैं कि—'एक लाख ईसाईयों को पुनः हिंदू बनाने की जूदेव की घोषणा।' 'उराँव आदिवासियों के धर्मांतरण के आरोपी पादरी को छह मास की कैद तथा जुर्माना।' इस प्रकार एक ओर ईसाईयों पर यह आरोप किया जाता है कि वे जबरदस्ती आदिवासियों को ईसाई बना रहे हैं तो दूसरी ओर अपनी धार्मिक स्थिति से उबकर वे ईसाई बन रहे हैं। अंबिकापुर क्षेत्र में आदिवासियों को बड़े पैमाने पर ईसाई बनाया जा रहा था। जिसके संबंध में न्यायाधीश ने ईसाई पादरियों को सजा भी सुनाई थी—“अभी कुछ दिन पहले ही अंबिकापुर के मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने इस गाँव में उराँव आदिवासियों को फुसला कर धर्मांतरण करवाने के एक आरोपी पादरी और सिस्टर को दोष सिद्ध होने पर संविधान की धारा पांच, धर्म स्वातंत्र अधिनियम उन्नीस सौ सड़सठ के तहत छह माह के सश्रम कारावास और पांच सौ रूपये अर्थदंड की सजा दी थी। पादरी की उम्र सत्तर वर्ष से अधिक थी तथा 'सिस्टर' की आय पैंतीस वर्ष के आसपास थी।”<sup>11</sup>

ब्रदर हरपाल ने सिख धर्म से ईसाई धर्म कैसे स्वीकार किया इस संबंध में उन्हीं के शब्दों में—'यीशु की रोशनी ने मुझे मार्ग दिखाया और मैं दिल्ली से ग्वालियर होता हुआ सारगुजा



में अपने आदिवासियों के बीच आया। यहाँ आकर वह रोशनी ठहर गई और उसने मुझे आदिवासी भाईयों की सेवा करने का आदेश दिया। वृद्ध हरपाल चंगाई शिबीर का आयोजन करते हैं। जिसमें वे प्रभु के आदेश से एक ही व्यक्ति को ठीक कर सकते हैं। चंगाई शिबीर में सबसे पहले प्रार्थना होती है जिसमें कहा जाता है कि—“प्रभु, हम तेरे बंदे हैं। हम बहुत दुर्बल हैं प्रभु, हम पर अपनी आशीष बरसा, जिसके संतान नहीं है, उनके यहां संतान हो, जिनके पुत्र राह से भटक गये हैं, उन्हें रास्ता दिखा। प्रभु, जो अपाहिज हैं उन्हें चंगा कर, अंधों को रोशनी दे, बहरों को कान दे प्रभु, से सब बीमार हैं, वे सब तेरे बंदे हैं, इन्हें चंगा कर—आमीन।”<sup>12</sup>

भारत के सभी आदिवासियों के समान सरगुजा क्षेत्र के उरांव आदिवासी भी धार्मिक अंधविश्वास से ग्रसित हैं। जब भूख के कारण कोई बीमार हो जाता है तो वे उसकी मूल समस्या रोटी की उपेक्षा कर उसे ओझा के पास ले जाते हैं। ओझा को वे बैगा कहते हैं। जिसके हाथ में झाड़ू है, उसने लाल रंग की लुंगी पहन रखी है। माथे पर राख मली हुई है। कंधों पर मोरपंख लटक रहे हैं। वह चीख रहा है। उसकी चीख की भाषा समझ के बाहर है, उसके अनुसार इस आदमी के शरीर में कोई प्रेतात्मा है जिसे वह अपने मंत्रों के प्रभाव से पूरी तरह बाहर निकाल देगा। वह झाड़ू से उस भूखे व्यक्ति के पीठ पर बार बार वार करता है जो लगभग मूर्च्छित अवस्था में लेटा है। उसकी झाड़ू फूक के बावजूद भूखा आदमी स्थिर मुद्रा में नीचे फर्श पर लेटा है। इस प्रसंग से यही सिद्ध होता है कि अज्ञान और दरिद्रता के कारण यह आदिवासी अंधविश्वासों के दास बन चुके हैं।

आदित्यपाल जब नमककला गाँव जाता है तब उसे दीवारों पर यह नारा दिखाई देता है कि—‘गर्व से कहो—हम हिंदू हैं’ वैसे यह नारा नया नहीं है। परंतु आज दीवारों पर लिखी गई

भाषा उसके लिए नई है। 'विदेशी धन पर अपना धर्म बेचने वाले गद्दारों, वापस आ जाओ।' और 'यहा रहना है तो हिंदू बनकर रहना होगा।' इस प्रकार हिन्दू धर्म के अनुयायी अपने धर्म का प्रचार-प्रसार करना चाहते हैं तो दूसरी ओर ईसाई भी अपने धर्म में लेने के लिए कटिबद्ध हैं।

सेठ घनश्याम दास हिंदू धर्म के अनुयायी हैं। उनके बगीचे में हिंदुओं की सभा होती है। जिसमें एक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का नेता यह आकांक्षा व्यक्त करता है कि—“मित्रों, यह हिंदू धर्म की संस्कृति की रक्षा का प्रश्न है जो हमारे जीवन से भी बड़ा है। हमारी परंपरा शांति की परंपरा है, लेकिन अगर कोई हमारे घर में ही घुस आये और हमारे घर के लोगों को बहलाने फुसलाने लगे, उन्हें लालच दिखाये तो घर के युवा खून में एक तरह की उत्तेजना का पैदा होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। आप उसे दबाने की कोशिश करेंगे तो उसमें विस्फोट हो जायेगा।”<sup>13</sup>

डॉ. सतीश पांडे आदिवासियों में व्याप्त धार्मिक चेतना के संबंध में लिखते हैं कि—“इस तरह चाहे हिन्दूवादी पार्टी हो या तथाकथित धर्मनिरपेक्ष कांग्रेस, धर्म के माध्यम से दोनों अपना राजनीतिक षडयंत्र जारी रखते हैं। मानवता की सेवा का दंभ करने वाला चर्च भी भूख मिटाने के लिए आदिवासियों को चावल तभी बाँटता है, जब उसका समर्थक पैलेस उसके साथ हो। धर्म की राजनीति का एक घिनौना रूप तब सामने आता है जब एक बूढ़ा व्यक्ति गाँव की एक छोटी लड़की से पूछता है कि माँ मरियम का भेजा देवी कौन है, जो हम सबकी सेवा के वास्ते रोम से आया है। बच्ची तपाक से बोलती है—सोनिया गाँधी।”<sup>14</sup>

‘ग्लोबल गाँव के देवता’ उपन्यास में आदिवासियों विशेषकर असुर आदिवासियों में व्याप्त अंधविश्वास या अंधश्रद्धा की और संकेत किया गया है। आदिवासी स्कूल में केअर टेकर गन्दूर आदिवासी है। उसके नाम में एक अंधश्रद्धा समाहित है। उसके पहले भाई-बहने बचते

नहीं थे। इसलिए उसके जन्म के समय टोटका किया गया। उसकी दादी ने उसके जन्म होने के तुरंत कपड़े में लपेटकर अहाते के बाहर कूड़े के ढेर पर रख दिया। इस बार बच्चा बच गया। इसलिए उसका नाम गन्दूर रख दिया, क्योंकि आदिवासी लोग कूड़े के ढेर को गन्दूर कहते हैं। इनमें एक अंधविश्वास यह है कि धान को आदमी के खून में सानकर विचड़ा डालने से फसल बहुत अच्छी होती है इसलिए इस सीजन में मुंडी कटवा लोग घूमते रहते हैं। लोहे की तेज कटार और बोरा लिए ये मुंडी कटवा अपना इलाका छोड़कर अनजान इलाके में घात लगाये रहते हैं। ऐसे ही एक मुंडीकटवा को देखकर आदिवासी असुर लालचंद साइकिल छोड़कर भागता है और पहाड़ी से फिसलने के कारण उसे चोट आती है।

इसी उपन्यास में नरबली की प्रथा विवेचित की गई है। भौरापाट गाँव से सटे पहाड़ में एक अस्सी फीट गुफा है। जिसकी चढ़ाई कठिन है। कहा जाता है कि वहाँ देवी थान है। देवी को जब बलि की जरूरत महसूस होती है तब गुफा से नगाड़े की आवाज आने लगती है। लोग समझ जाते हैं और मजबूरी में दूर-थाना इलाके के बाहर 'पूजा' लानी पड़ेगी। बली के बाद अपने आप नगाड़े की आवाज बंद हो जाती है। यह कहानी गाँव का बुधरामसिंह खरेवार लोगों को सुनाता है। समय के साथ इसमें परिवर्तन आया आज भी केवल कानी उँगला थोड़ी चिरकर खून की कुछ बूंदें देवा-थान को चढ़ाई जाती हैं। इतने पर भी देवा खुश हो जाती है।

प्रस्तुत उपन्यास में असुर आदिवासियों के धार्मिक विश्वास एवं पूजा-पाठ, अनेक पर्व आदि का वर्णन किया गया है। उपन्यासकार के शब्दों में—“बैगा-पुजार-पाहन, पर्व-त्यौहार, नक्षत्र-काल देख सरना-स्थल पर पूजा-पाठ करते। पाट देवता, सरना माई, महादनिया-महादेव,

सिंगबोंगा, गॉव घर पर प्रसन्न रहते। खेत-खलिहान गाय-गरु, बाल-बच्चा, परिवार-टोला सबका कुशल मंगल हो, यही हर पूजा की कामना होती।”<sup>15</sup>

आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में आदिवासियों की धार्मिक मान्यताओं को प्रस्तुत किया गया है। लगभग सभी उपन्यासों में आदिवासियों के द्वारा विशिष्ट धार्मिक अवसरों पर बलि देने की प्रथा वर्णित है। इसी के साथ अंधविश्वास के कारण ओझा को विशेष महत्व होता है। बीमारी या संकट के अवसर पर झाड़-फूंक करता है, प्राणियों की बलि देता है और जमकर शराब पीता है। इसका चित्रण विशेष रूप से 'जंगल जहाँ शुरु होता है' ओर 'पठार पर कोहरा' में हुआ है। इन आदिवासियों के अपने-अपने स्थानीय देवता होते हैं, जिनके सामने ये मन्नोती मानते हैं। साथ ही 'काला पादरी' और अल्मा कबूतरी' उपन्यास में आदिवासियों को ईसाई धर्म की ओर आकर्षित करने के लिए पादरी एवं मिशनरी द्वारा जो प्रयास किये जाते हैं, उसका विवेचन हुआ है। इतना निश्चित है कि आदिवासी अज्ञान और निर्धनता के कारण धार्मिक अंधविश्वासों के प्रति आकर्षित है।

.....

### —संदर्भ ग्रंथ—

- 1) काला पहाड़— भगवानदास मोरवाल, पृ. 55
- 2) अल्मा कबूतरी— मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 12
- 3) जंगल-जंगल लूट मची है— अमरेन्द्र किशोर, पृ. 70

- 4) जंगल जहाँ शुरु होता है— संजीव, पृ. 29
- 5) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 20
- 6) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 109
- 7) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 168
- 8) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 170
- 9) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 173
- 10) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 188
- 11) काला पादरी— तेजिन्दर, पृ. 54
- 12) काला पादरी— तेजिन्दर, पृ. 68
- 13) काला पादरी— तेजिन्दर, पृ. 84 .85
- 14) समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श— डॉ.शिवाजी देवरे,  
डॉ. मधुकर खराटे, पृ. 115
- 15) ग्लोबल गाँव के देवता— रणेन्द्र, पृ. 28

## षष्ठ अध्याय

'आदिवासी केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में  
सांस्कृतिक विमर्श'

## षष्ठ अध्याय

### आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में चित्रित सांस्कृतिक आयाम

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासी अपनी संस्कृति के प्रति अत्यंत आस्था निष्ठा रखते हैं। लोकनृत्य, लोकसंगीत, लोकवाद्य के साथ सामूहिक नृत्य इनकी परंपरा है। आदिवासी केन्द्रित कतिपय उपन्यासों में यह सांस्कृतिक आयाम परिलक्षित होते हैं।

‘जहाँ बॉस फूलते हैं’ में यह संकेत किया गया है कि लुशेई आदिवासी समाज में दहेज प्रथा है। जहाँ विवाह के पूर्व नुपुई मान अर्थात् दहेज तय कर लिया जाता है। इसलिए जोवा पाँच हजार रुपये देने को तैयार है। लेकिन वह रकम कहाँ से लायेगा? इस प्रश्न पर बूढा कहता है—‘कोई एक हजार तो उसके पास है, वह उसे देगा। फिर चर्च में ऐलान करायेगा और चंदा लेकर पाँच हजार इकट्ठा कर दिये जायेंगे।’ दोला की आर्थिक स्थिति भी दयनीय है। उसने अत्यंत गरीबी में जीवन बिताया है। उसके जन्म लेते ही पिता की मृत्यु हो गई। जब पाँच साल का था तब माँ की मृत्यु हो गई। जब वह बारह साल का हुआ तो उसे चर्च में पूजा के बरतन साफ करने का काम दिया गया। और उसके बदले में भोजन और पढ़ाई। भोजन में उसे अपार सुख मिलता था।

लुशेई आदिवासी समाज लोककलाओं में पारंगत है। पर्व, त्यौहार आदि पर संगीत नृत्य होता है। उपन्यासकार के शब्दों में—“नृत्य पराकाष्ठा पर था। चार बॉसों को अड़िया—बेड़िया चढ़ाकर लड़कियाँ उन्हें जमीन पर पीट—पीटकर बजा रहीं थीं और चार लड़कियाँ उनके चार चौकठों में पाँव डाल नाच रही थी।”<sup>1</sup>

भारतीय संस्कृति अतिथि को भगवान मानती है। 'पटार पर कोहरा' आदिवासी सोनारा संजीव के लिए रात्री विश्राम की व्यवस्था करता है। आर्थिक अभाव के कारण घर में जो कुछ उपलब्ध है उसे बिछाता है—“कमरे में खड़ी सुतली से बुनी खाट बिछा दी। घर के भीतर से भेड़ के रोएँ से बुना एक कम्बल ले आया। खाट पर फटे—पुराने कपड़ों की तहें साटकर सिली गुदड़ी बिछा दी। अभ्यस्त की भॉति बच्चे को बिस्तर लगाते देखते रहे संजीव।”<sup>2</sup> इसी प्रकार संजीव के लिए सोनारा की माँ रोटियों पर हल्का सरसों का तेल लगाती है। साग का स्वाद भी अभिनव है और अतिथि सत्कार से भोजन मानो अमृत बन जाता है। आदिवासी भी किसी भूखे को या अतिथि को भोजन कराने में आनंद का अनुभव करते हैं।

आदिवासियों की विशेषता यह है कि इनकी संस्कृति में प्रकृति के प्रति प्रेम है। इनके प्रकृति से रिश्ते अधिक हैं। इसलिए पर्यावरण और प्रदुषण शब्द इस क्षेत्र में अभी तक पहुँच नहीं पाये हैं।

यद्यपि विभिन्न आदिवासी समाज में समन्वय स्थापित हो रहा है। जैसे झारखंड में मुंडाळी, संथाली और खड़िया का भाषा भंडार और नागपुरियाँ बोली की लोकसंस्कृति एक दूसरे में घुल-मिल गई है। विभिन्न बोलियों के मिश्रण से एक नया भाषा संस्कार निर्मित हुआ है। जिसे मुंडा समाज ने आत्मसात कर लिया है। तथापि पर्व और त्यौहारों या धार्मिक अनुष्ठानों के बीच मंत्रोपचार पारंपारिक मूल भाषा में ही होते हैं। आदिवासी शोषण, दुःख पीड़ा को सहते हैं। परंतु अपने धार्मिक, सांस्कृतिक परंपरा को बनाये हुए हैं। जो उन्हें जीने की उर्जा प्रदान करते हैं। गजलीठोरी गाँव में चैत मास में सरहुल का त्यौहार मनाया जाता है। पूरे गाँव में उल्लास और उत्साह दिखाई देता है। उस समय लड़कियाँ शालवृक्ष के नीचे इने चबूतरे को गोबर और



मिट्टी से लेपती है। वहाँ एक बॉस गाड़ा जाता है, जिसकी फुगनी पर यफेद झण्डा बॉधा जाता है। सभी आदिवासी अपने पारंपारिक वेशभूषा में सज्जित होकर कंधे पर तरकश तथा धनुष लेकर आते हैं। आदिवासी लड़कियाँ भी सजकर झूमर नाच करती हैं और गीत गाती हैं। जिसका अर्थ होता है सरहुल का चन्द्र आ गया, फल और फूल लेकर सरहुल का चन्द्रमा आया है। माँदर की थाप के साथ नृत्य सजता है। यह दृश्य देखकर संजीव को लगता है कि सचमुच आज मुण्डाओं के जीवन में चॉद उतर आया है। लेखक के शब्दों में—“अपने समस्त दुःखों, पीड़ाओं और दैन्य के बावजूद जल अपनी उत्सवधर्मिता को सँजोए हुए है। बचाकर रखे हुए है अपने पर्व—त्यौहार! इसके बावजूद कि मुण्डा अपमानित और शोषित हैं, संवेदनाहीन होते नागरीय समाज के विपरीत जंगल में अपनी नैतिक, पारिवारिक और सामाजिक संवेदना के स्रोतों को सरस बनाये रखा है। इसी गॅवई जिजीविषा ने ही संभवतः भारत के आम आदमी को बचाये रखा है।”<sup>3</sup>

आदिवासी समाज में विवाह एक मस्ती का संस्कार है। रुदिया और परभू का विवाह निश्चित होता है। इतनी ढेर सारी आदिवासी लड़कियों में चरभू ने रुदिया को चुना। यह रुदिया के लिए बड़ी खुशी की बात थी। इसके पूर्व परभू रुदिया को भगाकर ले जाता है। इसलिए दोनों के विवाह को मान्यता मिलती है। मेव आदिवासियों में विवाह अपनी रुढ़ियों के अनुसार होता है। विशेष रूप से प्रत्येक रस्म के समय गीत गाये जाते हैं। जिसमे व्यंग्य, मस्ती, छेड़छाड़ होती है—

‘धौले—धौले चावल, उजलो है भात,

बनड़ा ले—ले कलम—दवात,

चलो जा पढ़णा कू,

बनड़ा हमने बुलायों एकला ,

जैसे बन्ना के गीतों को सुनकर ऐसा लगने लगा गाढ़ी रात में किसी ने उल्लास का घोल घोल दिया है। रुमाली, अंगूरी, रामदेई, तरकीला आदि स्त्रियों के माध्यम से मेवाती संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है।

आदिवासियों के गीत अत्यंत मार्मिक और संवेदनशील होते हैं। विवाह के समय कन्या को बिदा करते समय एक कारुणिक गीत गाया जाता है। जिसका आशय है—“जिस गाँव में तू जायेगी ओ धिया, सूखे वृक्ष पत्तों से लद जाएँगे! बॉझ औरतों की गोद भर उठेगी! बूढ़ी गायों के थन से दूध टपकने लगेगा! जहाँ तेरे पाँव पड़ेंगे धिया, उजड़े गाँव आबाद हो जाएँगे! सेमल और कपास के बीज मोतियों में बदल जायेंगे...!”<sup>4</sup> ये लोकगीत साहित्यिक गीतों से भी अधिक मार्मिक और अर्थधर्मी होते हैं।

‘जंगल जहाँ शुरु होता है’ में थरूहट में होने वाले मेले का वर्णन है। इसे सुभद्रा भी कहा जाता है। आदिवासियों के लिए यह सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण आयोजन है। मेले में ज्यादातर थारु और थारु की स्त्रियाँ दिखाई देती हैं। एक और मंदिर के पास बलि दी जा रही थी तो दूसरी ओर मंदिर में दर्शनार्थियों की भीड़ उमड़ी थी। ढोल—मंजीरे की ताल पर कुछ ओझा पारबतियों के पैजा में लय कर रहे थे। आदिवासियों में ओझा के प्रति अत्यंत विश्वास होता है। इस मेले में भी जार्जेट की लाल छीटों की मुचड़ी साड़ी में एक सुंदर—सी युवती को जिसने नाक तक छिपा रखा था। फूल, अक्षत, पैसे देकर ओझा के सामने आँचल पसार लिया। ओझा कुछ फूल, अक्षत उसे वापिस करते हैं। और चॉवर से माँ—बेटी के सिर पर छुआ रहा था।

बिसराम की बहू की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण उसने किसी तरह पाँच रुपये में एक कबूतर खरीदा था। जिसकी बलि दी जा चुकी थी। बीस थारु बालाएँ सभी नंगे पाँव हैं। परंतु सुदंरता में एक से एक बढ़कर है। गीत गाते हुए नाच रही थी। थरुहट की अप्सराएँ कभी सिमटकर, कभी झुक-झुककर, सुध-बुध खोकर नाच रही थी।

मैत्रेयी पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी' में आदिवासी कबूतरा की लोकसंस्कृति का निरूपण किया है। त्यौहारों में समूह नृत्य होते हैं। नृत्य में औरतें भी सहभागी होती हैं। लोकगीत गाये जाते हैं। रातभर गीत और लोकनृत्य चलते रहते हैं। किसी की मृत्यु होने पर आसपास के डेरे की स्त्रियाँ मृतक के यहाँ मर्सिया गाने जाती हैं। जंगलिया की मृत्यु होने के पश्चात् कदमबाई ने कुआँरी लड़कियों से चबूतरा लिपवाया था। अगरबत्ती, मोमबत्ती जलाई थी। देवताओं की मढ़िया बनाने के लिए कोरा कपड़ा थोड़ा उपर उठाकर ताना गया। लोग बारी-बारी से आते और कान पीसे अर्थात् बलि के बकरे को काटने वाले चाकू से देवी के चबूतरे पर कट्टस निशान बनाते।

लेखिका शरद सिंह ने 'पिछले पन्ने की औरतें' उपन्यास में लोकनृत्य एवं लोकगीत प्रस्तुत किये गये हैं। इन बेड़नियों के 'राई' नृत्य को सांस्कृतिक आयोजन के रूप में देश-विदेश के प्रतिष्ठित मंच पर प्रस्तुत किया जाता है। बेड़नी के साथ उसके दल के साथ वादक-मंडली भी होती है। जिसे 'सोबत', 'सोहबत' अथवा 'रइया' कहते हैं। यह रइया अथवा सोहबतिया सिर पर रंगीन कपड़े का साफा बांधते हैं। कुरता और कुरते पर जाकीट पहनते हैं। नृत्य स्तर पर 'कांडा' अर्थात् अलाप जगाया जाता है। लेखिका के शब्दों में—“राई नृत्य के दौरान जो गीत गाए जाते हैं उन्हें टोरा, खयाल, फाग, लटका एवं सौबत के नाम से जाना जाता है। टोरा एक पंक्ति का गीत होता है। इन गानों के बोल कभी व्यंगात्मक होते हैं तो कभी अत्यंत अश्लील।”<sup>5</sup>

‘रेत’ उपन्यास में यह संकेत किया गया है कि बंजर समाज में भी संस्कारों को महत्व होता है। सुशिला के बड़े बेटे मंगल की सगाई संतों से होती है। कमलाबुआ ने जेब से एक-एक के दो चांदी के सिक्के और हल्दी की गॉठ निकाली और बैदजी की तरफ बढ़ाती बोली –‘ले बैदजी, तू ही कर सगाई की रसम पूरी’ इस बार को सिक के बीज धर के पूज। इसके बाद वधू-वर के हाथ-पॉवों को हल्दी का घोल लगाते हुए सगाई का सरम पूरी की। भारत में अखजी अर्थात अक्षय तृतीया शुभ पर्व माना गया है। कमलाबुआ ने पूजा की—“बैशाख माह के शुक्ल पक्ष का तीसरा दिन। एकदम अबूझ-असूज सावा। न किसी ब्राम्हण से पत्रा बचवाने का झंझट, न कोई मुहूर्त निकलवाने का टंटा। न वर-वधू के ग्रह-नक्षत्रों का मिलान, न मंगल-अमंगल का विचार। वैसे भी पंडित-बाम्हन ‘इज्जतदारों’ के यहाँ आते हैं भॉवर डलवाने, कंजरो के यहाँ कर्हों।”<sup>6</sup>

आदिवासियों की एक विशेषता है कि वे अपनी संस्कृति के संरक्षक रहे हैं। पर्व, त्यौहार आदि अवसरों पर आदिवासी अपने आर्थिक अभाव को विस्मृत कर नृत्य, संगीत में खो जाते हैं। इसका चित्रण ‘जहाँ बॉस फूलते हैं’ में हुआ है। ‘पठार पर कोहरा’ में भी यही स्थिति है। यह आदिवासी अपने समस्त दुःखों को विस्मृत कर उत्सवधर्मिता संजोए हुए हैं। ‘मेव’ आदिवासियों में विवाह के समय पर इनके सांस्कृतिक गीतों को देखा जा सकता है। इनके गीत अत्यंत मार्मिक और संवेदनशील होते हैं। विशेषतः कन्या बिदाई के समय के गीत करुणाप्रधान होते हैं जैसाकि ‘पठार पर कोहरा’ में चित्रण हुआ है। ‘पिछले पन्ने की औरते’ उपन्यास में बेड़नियों के राई नृत्य को सांस्कृतिक रूप में महत्व प्राप्त हुआ है। ‘अल्मा कबूतरी’ में भी त्यौहारों में आदिवासी स्त्रियों के द्वारा सामुहिक नृत्य में सहभागी होने का वर्णन मिलता है।

—संदर्भ ग्रंथ—

- 1) जहाँ बॉस फूलते हैं— श्रीप्रकाश मिश्र, पृ. 111
- 2) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 96
- 3) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 202—203
- 4) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह, पृ. 210
- 5) पिछले पन्ने की औरतें— शरद सिंह पृ. 253
- 6) रेत— भगवानदास मोरवाल, पृ. 23

# सप्तम अध्याय

उपसंहार

## उपसंहार

भारत जैसे विशाल राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में आदिवासियों का निवास है। बंजारा, गाड़िया लुहार जैसे आदिवासी एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमते रहते हैं। जिसका चित्रण 'रेत' में दिखाई देता है। वास्तव में आदिवासी भारत के मूल निवासी हैं। वे जल, जंगल और जमीन से संपृक्त रहे हैं। भारत में लगभग दस करोड़ आदिवासी जनसंख्या हैं, जो दूर-दराज के जंगलों में रहने के कारण समाज की मुख्य धारा से कटी हुई हैं। विकास की किरणें उनके क्षेत्र तक नहीं पहुँची हैं। ये रोटी की खोज में वन-वन भटकने पर विवश हैं। आदिवासियों की त्रासदी यह है कि वे सदियों से सभ्य समाज के द्वारा छले गये हैं। इनका जीवन सामान्यतः जंगलों में वनौपज को इकट्ठा करने में लगा हुआ है। ये गोंद, शहद, तेंदु के पत्ते आदि एकत्र करते हैं और उन्हें बाजार में बेचकर अपनी जीविका चलाते हैं।

आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में आदिवासियों के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आयामों को वर्णित किया गया है। आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों की एक दीर्घ परंपरा रही है। सन् 1899 में जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी के उपन्यास 'वसंत मालती' से लेकर सन् 2009 में प्रकाशित 'अरण्य में सूरज' का अध्ययन करने पर आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों की विपुलता दृष्टिगत होती है। इस परंपरा में देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिए' एवं योगेन्द्रनाथ सिन्हा का 'वनलक्ष्मी', डॉ. रांगेय राघव का 'कब तक पुकारु', राजेन्द्र यादव का 'जंगल के फूल', राकेश वत्स का 'जंगल के आसपास', शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष', वीरेन्द्र जैन का 'धार', मनमोहन पाठक का 'गगन घटा घहरानी', संजीव का 'पाव तले की दूब', 'पार', 'जंगल जहाँ शुरु होता है', श्रीप्रकाश मिश्र का 'जहाँ बॉस फूलते हैं', मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' राकेश कुमार सिंह का

‘पठार पर कोहरा’, लेखिका शरद सिंह का ‘पिछले पन्ने की औरतें’, भगवानदास मोरवाल का ‘काला पहाड’, ‘रेत’, श्रीमती अजित गुप्ता का ‘अरण्य में सूरज’, रणेन्द्र का ‘ग्लोबल गॉव के देवता’ आदि उपन्यास उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में विवेच्य उपन्यासों का परिचय दिया गया है। जिसमें 1990 से लेकर अद्यतन आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों का परिचय दिया गया है। वीरेन्द्र जैन का ‘पार’, संजीव का ‘पाव तले की दूब’, भगवानदास मोरवाल का ‘काला पहाड’, श्रीप्रकाश मिश्र का ‘जहाँ बॉस फूलते हैं’, मैत्रेयी पुष्पा का ‘अल्मा कबूतरी’ राकेश कुमार सिंह का ‘पठार पर कोहरा’, लेखिका शरद सिंह का ‘पिछले पन्ने की औरतें’, भगवानदास मोरवाल का ‘रेत’, श्रीमती अजित गुप्ता का ‘अरण्य में सूरज’ का परिचयात्मक अध्ययन देते हुए इन्हीं उपन्यासों में समाहित आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पक्ष को विवेचित किया गया है।

यह एक सच्चाई है कि आदिवासी आर्थिक दृष्टि से अत्यंत अभावग्रस्त होते हैं। जंगल—जंगल भटककर वनौपज को इकट्ठा करते हैं और उन्हें व्यापारी अत्यंत अल्प दाम पर खरीदते हैं। निरक्षर होने के कारण इनके खेतों पर जमींदार, साहुकार इनसे अंगूठा लगाकर कब्जा कर लेते हैं। ‘पार’ उपन्यास की स्त्रियाँ अत्यंत परिश्रम करती हैं। वे बीजना बनाती हैं, टोकनियों बुनती हैं, झाडू बनाती हैं, सूप और पंखे बनाती हैं, तेंदु के पत्ते बीनती हैं और इसके बदले में उन्हें अत्यंत कम कीमत प्राप्त होती है। इन आदिवासियों की सबसे बड़ी समस्या रोटी है। जिसके लिए वे जंगल—जंगल घूमते हैं, परंतु भीख नहीं माँगते। ‘अल्मा कबूतरी’ उपन्यास में कबूतरा आदिवासी चोरी, डकैती करते हैं। स्त्रियाँ देहिक व्यापार करने के लिए विवश हैं। ‘काला पहाड’ में आदिवासी मेवातों के आर्थिक पिछडेपन का विवेचन किया गया है। यहाँ बार—बार सूखा



पड़ता है। जलपरियोजना का अभाव है। 'जहाँ बॉस फूलते हैं' में भी आदिवासियों के भूखे रहने की विवशता वर्णित है। 'जहाँ जंगल शुरू होता है' में थारु आदिवासी काम के अभाव में दर-दर भटकते हैं। परंतु वनौपजों पर ठेकेदार, अधिकारी बैठे हैं। 'पठार पर कोहरा' में साहुकार, जंगलसेना, पुलिस, ठेकेदार मिलकर आदिवासियों का आर्थिक शोषण करने का विस्तार से चित्रण हुआ है। आदिवासी क्षेत्र में आर्थिक लूट मची हुई है। 'पठार पर कोहरा' में जमींदार, ठेकेदार, साहुकार द्वारा किया गया आर्थिक शोषण चित्रित है। 'पिछले पन्ने की औरतें' में आदिवासी समाज में व्याप्त यह विडंबना व्यक्त की है कि इस समाज में लड़की के जन्म को उत्सव के रूप में मनाया जाता है। इसका कारण यह है कि यह लड़की बड़ी होने के पश्चात् देहिक व्यापार कर परिवार का पालन-पोषण कर सकेगी। इस उपन्यास में यह भी वर्णित है कि सामान्यतः आदिवासी पुरुष निकम्मे और आलसी होते हैं। परंतु स्त्रियाँ परिवार की अभिभावक बनती हैं। 'पिछले पन्ने की औरतें' भी चोरी करती हैं। सामान्यतः आदिवासी उपन्यासों में आदिवासियों के गराबी की भयावहता को चित्रित किया गया है।

आदिवासी केन्द्रित सभी उपन्यासों में आदिवासी समाज का चित्रण हुआ है। आदिवासियों में संयुक्त परिवार स्थित रहता है। इसका एक कारण सुरक्षा है। 'पार' उपन्यास में यह यथार्थ वर्णित है कि वहाँ मुखिया का चुनाव नहीं होता, बल्कि वंशपरंपरा के अनुसार मुखिया बनता है। यदि किसी परिवार में लड़का न हो तो आदिवासी समाज का सबसे वृद्ध व्यक्ति मुखिया को नियुक्त करता है। आदिवासी परिवारों में विवाह करना और तलाक देना मामूली बात है जिसके लिए केवल पंचायत को दंड देना पड़ता है।

आदिवासी स्त्री भी अपने पुत्र के प्रति अत्यंत चिंतित रहती है। 'अल्मा कबूतरी' की कदमबाई को अपने पुत्र राणा का परंपरागत व्यवसाय चोरी करने से मना करने पर चिंता होती है। 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में रंगेनी पति की मृत्यु के पश्चात अपने बेटे को पारिवारिक व्यवसाय जैसे तीर बनाना, धनुष्य डोरी तानना, खटियाँ बुनना सिखाती है। निरक्षर और दरिद्रता के कारण आदिवासी परिवार में संतान उत्पत्ति पर कोई प्रतिबंध नहीं है। अतः कम उम्र में विवाह और प्रतिवर्ष एक संतान के कारण मृत्युदर अधिक होती है जिसका उल्लेख 'पठार पर कोहरा' में हुआ है आदिवासियों में पंचायत व्यवस्था अत्यंत कड़ी है। पंचायत के निर्णय को स्वीकार करना ही पड़ता है। 'जहाँ बॉस फूलते हैं' में अपराध सिद्ध होने पर कोड़े लगाये जाने और जूते मारने का उल्लेख है 'अल्मा कबूतरी' में कबूतरा समाज का सर्वांगीण चित्रण हुआ है। इस समाज में पुरुष प्रधानता है। यौन संबंधों की स्वच्छंदता है। शराब बनाना और चोरी करना इस समाज का पारंपारिक व्यवसाय है। अंग्रेजों ने इस समाज को अपराधी घोषित किया था। मारपीट करना इस समाज में मामूली बात है। 'पठार पर कोहरा' में आदिवासियों के यथासंभव अहिंसावादी रहने का उल्लेख है। सभी उपन्यासों में आदिवासी समाज के शोषण की भयंकरता वर्णित है। इन आदिवासियों के लिए जंगल ही सर्वस्व है। वही इनकी आत्मा है। परंतु समसामायिक युग में जंगलों के आरक्षण के कारण इन्हें बार-बार खदेड़ा जाता है और वे विस्थापन के दर्द को सहते रहते हैं। बेड़िया और बंजारा समाज घुमक्कड रहा है। आदिवासी समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत मर्मांतक है। ये परिवार के पालन-पोषण के लिए अथक परिश्रम करती है। 'पठार पर कोहरा' जैसे उपन्यासों में ये स्त्रियाँ ही जंगलों से लकड़िया लाती है। वनौपज इकट्ठा करती है इसका उल्लेख हुआ है। 'रेत', पिछले पन्ने की औरतें' जैसे उपन्यासों में इनके देहिक व्यापार की

व्यवस्था वर्णित है। आदिवासी समाज की त्रासदी यह है कि एक ओर जमींदार और दूसरी ओर भूत-प्रेत दानों ही इन्हें निचोड़ लेते हैं। रणेन्द्र के उपन्यास 'ग्लोबल गॉव के देवता' में आदिवासी असुर समाज का शोषण ग्लोबल गॉव के देवता अर्थात् वेदांग और टाटा जैसी कंपनियों किस प्रकार करती है इसका चित्रण है। इस समाज में आज भी 'लिडिंग टुगेदर' का चलन है। समग्रतः आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में आदिवासियों के सामाजिक जीवन को यथार्थ धरातल पर व्यक्त किया गया है।

आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में आदिवासियों में व्याप्त धार्मिक अंधविश्वास को लगभग सभी उपन्यासकारों ने व्यक्त किया है। इसी के साथ साहुकारों, जमींदारों के स्वार्थी धार्मिक प्रवृत्ति का रेखांकन भी हुआ है। वीरेंद्र जैन के 'पार' उपन्यास के साव को पाप छिपाने के लिए मेदिर बनाते समय दान देना पड़ता है। 'काला पहाड़' में हिंदु-मुस्लिम की एकता का वर्णन करते हुए बाबरी मस्जिद कांड के पश्चात हिंदु-मुस्लिमों में व्याप्त वैमनस्य का संकेत किया गया है। आदिवासियों में ओझा तथा मुखिया को विशेष महत्व होता है। इनकी सलाह के अनुसार ही धार्मिक अनुष्ठान होता है। 'अल्मा कबूतरी' में बकरे का खून चढ़ाने का वर्णन है। जब कोई बीमार पड़ जाता है, तब वीर देवता की मूर्ति के सामने मंत्र पढ़े जाते हैं और पशुबलि दी जाती है। जब कोई शुभ कार्य प्रारंभ किया जाता है तो देवी देवताओं को आदिवासी भी पूजते हैं। 'रेत' उपन्यास की रुक्मिणी राजनीति में प्रवेश करते समय हिंदु देवी देवताओं के सामने पीर की मूर्ति रखती है और वहाँ चादर चढ़ाती है। ये आदिवासी भूत-प्रेत में विष्वास रखते हैं और उनसे डरते भी हैं। कोई बीमार होने पर यह माना जाता है कि उसे भूत प्रेत ने जकड़ लिया है। अतः ओझा को बुलाया जाता है। जिसका वर्णन 'जंगल जहाँ शुरु होता है' में हुआ है। 'पठार पर कोहरा' में

गजलीठोरी गाँव के आसपास के सभी आदिवासी गाँवों में यही विदित हैं कि रंगेनी भगतिन है और वह बीमार को बीमारी से मुक्त कर सकती है। इन आदिवासियों की यह विशेषता है कि वे धार्मिक अनुष्ठान के बाद शराब पीते हैं और सामूहिक नृत्य करते हैं। 'काला पादरी', 'ग्लोबल गाँव के देवता' जैसे उपन्यासों में गरीबी के कारण आदिवासियों का ईसाई धर्म स्वीकार करने का रेखांकन हुआ है। आदिवासियों के अपने देवी-देवता हैं जिनकी वे पूजा-पाठ करते हैं।

आदिवासियों की एक विशिष्ट संस्कृति है जिसका विवेचन कतिपय आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में हुआ है। 'जहाँ बॉस फूलते हैं' में आसाम, मिजोराम के बॉस नृत्य का वर्णन हुआ है। बॉसों के चौकटों में पॉव डालकर युवतियाँ नृत्य करती हैं। अतिथि सत्कार इनकी विशेषता है। 'पठार पर कोहरा' में सोनारी की माँ संजीव के लिए रोटियाँ और साग बनाती है। किसी भूखे अतिथि को भोजन कराना इनकी परंपरा है। यद्यपि आदिवासी आर्थिक अभाव में हैं फिर भी अतिथि सत्कार और धार्मिक अनुष्ठान में यथाशक्ति खर्च करते हैं। विवाह आदि अवसरों पर लोकगीत, लोकनृत्य की मस्ती दृष्टिगत होती है। उपन्यासकारों ने आदिवासियों के गीतों को भी उपन्यासों में सामील किया है। इनके गीत अत्यंत मार्मिक और संवेदनशील होते हैं। विशेष रूप से कन्या बिदाई के समय जो गीत गाये जाते हैं। वे अत्यंत करुणाजनक होते हैं। इसी प्रकार उपन्यासकारों ने आदिवासियों के मेले में जाने और वहाँ आनंद उत्सव मनाने का उल्लेख किया है। 'जंगल जहाँ शुरु होता है' में थरूहट में होनेवाले मेले का चित्रण हुआ है। 'अल्मा कबूतरी', 'पिछले पन्ने की औरतें', 'रेत' आदि उपन्यासों में आदिवासियों की संस्कृति का निरूपण हुआ है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि विवेच्य आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में उपन्यासकारों ने आदिवासियों की आर्थिक स्थिति को संवेदनात्मक धरातल पर वर्णित किया है। सभी उपन्यासों में

आदिवासी समाज के जीवन, उनकी रहन-सहन को वर्णित किया है। इसी के साथ उनकी धार्मिकता और उनके सांस्कृतिक पक्ष का चित्रण किया है। वास्तव में ये उपन्यासकार हाशिए पर होने वाले आदिवासी समाज के प्रति प्रतिबद्ध है और यही प्रतिबद्धता उनके उपन्यासों में व्यक्त हुई है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट-1

1) अरण्य में सूरज- श्रीमती अजित गुप्ता,

सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2009

2) अल्मा कबूतरी- मैत्रेयी पुष्पा,

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2000

3) काला पहाड़- भगवानदास मोरवाल,

राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1999

4) काला पादरी- तेजिन्दर,

नैशनल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, प्र. सं. 2005

5) गगन घटा घहरानी- मनमोहन पाठक,

प्र. सं. 1991

6) ग्लोबल गाँव के देवता- रणेन्द्र,

भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र. सं. 2009

7) जंगल जहाँ शुरु होता है- संजीव,

राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2000

8) जहाँ बॉस फूलते हैं- श्रीप्रकाश मिश्र,

यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्र. सं. 1997

- 9) पठार पर कोहरा— राकेश कुमार सिंह,  
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वि. सं. 2005
- 10) पाव तले की दूब— संजीव,  
प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1995
- 11) पार— वीरेंद्र जैन,  
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1994
- 12) पिछले पन्ने की औरतें— शरद सिंह,  
सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2005
- 13) रेत— भगवानदास मोरवाल,  
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2008



## परिशिष्ट-2

### -संदर्भ ग्रंथ-

- 1) आदिवासी अस्मिता की पड़ताल करते साक्षात्कार— सं. रमणिका गुप्ता  
स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012
- 2) आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य— डॉ. उषा राणावत, डॉ. सतीश पाण्डेय,  
डॉ. शीतला प्रसाद दुबे अतुल प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012
- 3) आदिवासी भाषा और शिक्षा—सं. रमणिका गुप्ता,  
स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012
- 4) आदिवासी विमर्श: स्वस्थ जनतांत्रिक मूल्यों की तलाश—डॉ.वीरेन्द्र सिंह यादव,  
डॉ. रावेन्द्र कुमार साहू पैसिफिक पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012
- 5) आदिवासी विकास से विस्थापन— डॉ. रमणिका गुप्ता,  
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008
- 6) आदिवासी समाज और शिक्षा—रामशरण जोशी,  
ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1996
- 7) आदिवासी साहित्य विविध आयाम— सं. रमेश संभाजी कुरे,  
डॉ. मालती शिंदे, प्राचार्य प्रवीण शिंदे, विकास प्रकाशन कानपुर,  
प्रथम संस्करण 2013
- 8) आदिवासी स्वर और नई शताब्दी— सं रमणिका गुप्ता,

वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2008

9) आदिवासी शौर्य और विद्रोह— सं. रमणिका गुप्ता,

राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012

10) आधुनिक हिन्दी उपन्यास—भाग—1 सं. भीष्म साहनी, डॉ. रामजी मिश्र,

भगवती प्रसाद निदारिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2010

11) आधुनिक हिन्दी उपन्यास—भाग—2 सं. नामवर सिंह,

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010

12) 21 वीं सदी की स्त्री—अस्तित्व एवं अस्मिता तक....संपादक—डॉ. किरणबाला

जाजू मुंदडा, इंटरनेशनल पब्लिकेशन, कानपुर, प्रथम प्रकाशन 2014

13) 21 वीं शती का वैश्विक हिन्दी साहित्य—डॉ. ललिता राठोड,

डॉ. ओमप्रकाश झवर, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 2012

14) उत्तर आधुनिकता विभ्रम और यथार्थ—डॉ. रवि श्रीवास्तव

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2011

15) उत्तरशती के उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी—

डॉ. जयश्री गावित, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

16) कथाकार मंजुल भगत—डॉ. आनंद खरात,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

- 17) कमलेश्वर का औपन्यासिक संसार— डॉ. भाउसाहेब नळे,  
विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012
- 18) कहानीकार मालती जोशी— डॉ. विजय घुगे,  
विकास प्रकाशन, कानपुर. प्रथम संस्करण 2011
- 19) कहानीकार रामदरश मिश्र— डॉ. अमृत खाडपे,  
विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012
- 20) कॅंअर बेचैन की गजलों का चिंतन पक्ष— डॉ. रघुनाथ कश्यप,  
विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012
- 21) कृष्णा सोबती की कथाभाषा—डॉ. एन जयश्री,  
विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2013
- 22) काटना शमी का वृक्ष पद्म पंखुरी से— फणीश्वरनाथ रेणु,  
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2012
- 23) चन्द्रकान्ता का कथा—साहित्य—डॉ. जगदीश चव्हाण,  
विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012
- 24) चित्रा मुद्गल का कथा—साहित्य— डॉ. कल्पना पाटील,  
विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012
- 25) जंगल—जंगल लूट मची हैं—अमरेन्द्र किशोर,

राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005

26) झारखंड के आदिवासियों के बीच-वीर भारत तलवार,

भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2012

27) तिलकराज गोस्वामी का गद्य-साहित्य- डॉ. संस्कृति,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

28) दलित सशक्तिकरण-डॉ. नीतू काजल,

संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2013

29) दुष्यन्तोत्तर हिन्दी गज़ल-डॉ. मधु खराटे

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

30) नरेन्द्र मोहन का रचना संसार-डॉ. संजय ढोडरे,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2013

31) नवें दशक के आंचलिक उपन्यास-डॉ. पांडुरंग पाटील,

दिव्य डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण

32) निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में जीवन मूल्य-डॉ. प्रमोद पाटील,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

33) निरूपमा सेवती के कथा-साहित्य में नारी- डॉ. शिवाजी देवरे,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

34) निलोफर— कृष्णा अग्निहोत्री

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1988

35) प्रथम दशक के महिला लेखन में स्त्री विमर्श—डॉ. मृदुला वर्मा,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

36) प्रभा खेतान के साहित्य में नारी विमर्श—डॉ. कामिनी तिवारी,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

37) प्रयोजनमूलक हिन्दी—डॉ. अजय प्रकाश, डॉ. रमेश वर्मा, डॉ. योगेन्द्र सिंह

समवेत प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2007

38) भारतीय आदिवासी—डॉ. लक्ष्मणप्रसाद सिन्हा,

जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2010

39) भारतीय साहित्य की भूमिका— रामविलास शर्मा,

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1996

40) मन्नू भंडारी के साहित्य में चित्रित समस्याएँ—डॉ. माधवी जाधव,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

41) महिला रचनाकारों के उपन्यासों में नारी सशक्तिकरण—डॉ. स्वाती नारखेडे

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

42) मेहरून्निसा परवेज के कथा—साहित्य में नारी—डॉ. आर. एस. जगताप,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2010

43) मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी—डॉ. संतोष पवार,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

44) यहाँ वितस्ता बहती हैं—चन्द्रकान्ता,

वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2011

45) रांगेय राघव के जीवनी परक हिन्दी उपन्यास—डॉ. छाया पाटील,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2011

46) राजेन्द्र अवस्थी की कहानियों में आँचलिकता—डॉ. बी. एम.परदेशी,

प्रा. एम. बी. तहखाने, विद्या प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2011

47) राजी सेठ का कथा साहित्य: चिन्तन और शिल्प—डॉ. सरोज शुक्ला,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

48) राही मासूम रजा का साहित्य: संवेदना और शिल्प—डॉ. पूनम त्रिवेदी,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

49) रेणु और दांडेकर के आँचलिक उपन्यास— डॉ. सरोज पाटील,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 201

50) वन तुलसी की गंध— फणीश्वरनाथ रेणु,

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 2007

- 51) वर्तमान समय में आदिवासी समाज—सं. डॉ. गीता वर्मा, रवि कुमार गोंड,  
वाङ्मय बुक्स, अलीगढ़, प्रथम संस्करण 2012
- 52) विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य—सं. सुरेश माहेश्वरी  
भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014
- 53) समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श—डॉ. शिवाजी देवरे,  
डॉ. मधु खराटे, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012
- 54) समकालीन लेखिकाओं के उपन्यासों में नारी—डॉ. रेखा पाटील,  
विकास प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण 2013
- 55) संजीव जनधर्मी कथाशिल्पी—डॉ. गिरीश काशिद, डॉ. जयश्री शिंदे,  
दिव्य डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण 2011
- 56) संजीव व्यक्तित्व एवं कृतित्व—डॉ. रामचंद्र मारुती लोंढे,  
ए. बी. एस. पब्लिकेशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2012
- 57) साहित्य का समाजशास्त्र— डॉ. बच्चन सिंह,  
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2007
- 58) साहित्यालोक— डॉ. कृष्णा पोतदार,  
प्रतिक्षा प्रकाशन, लातूर, प्रथम संस्करण 2005
- 59) सुरेन्द्र वर्मा व्यक्ति और अभिव्यक्ति—डॉ. जिजाबराव पाटील,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2011

60) संजीव की कहानियाँ— स्नेहजा पाटील

ए. बी. एस. पब्लिकेशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2013

61) स्नेहाकर्षण— डॉ. अमरजा रेखी,

गायत्री ज्ञानदा प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2000

62) श्रवणकुमार गोस्वामी का औपन्यासिक संसार— डॉ. सुनील बनसोडे,

विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2011

63) हिन्दी ग़ज़ल के प्रमुख हस्ताक्षर—डॉ. मधु खराटे,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

64) हिन्दी उपन्यासों में दलित चेतना—डॉ. रामचन्द्र माली,

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

65) हिन्दी उपन्यासः वस्तु एवं शिल्प—डॉ. श्रद्धा उपाध्याय

अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

66) हिन्दी में आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन

— प्रो. बी. के. कलासवा, मयूर प्रकाशन, दिल्ली. प्रथम संस्करण 2009

67) हिमांशु जोशी के उपन्यासों में आँचलिकता—डॉ. कृष्णात पाटील

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण. 2012

68) हिन्दी ग़ज़ल और ग़ज़लकार—डॉ. मधु खराटे,



विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012

69) हिन्दी साहित्य के नाभि पुरुष— डॉ. नगेन्द्र, संपादक डॉ. शैलजा माहेश्वरी

नीरज बुक सेंटर, दिल्ली. प्रथम संस्करण 2014

70) हुल पहाडिया— राकेश कुमार सिंह

सामायिक बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012

71) त्रिया हठ— मैत्रेयी पुष्पा,

किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009